प्रकाशक
कबीर पारख संस्थान
संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011
दूरभाष : (0532) 2436820, 2436020, 2436100
Visit us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo.com

पहली बार वि०सं० 2040 सन् 1983
दूसरो बार वि०सं० 2066 सन् 2009
सत्कबीराब्द 610

ISBN : 978-81-8422-186-2

© **कबीर पारख संस्थान**

मूल्य : 00.00 रुपये

मुद्रक
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०
पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद

Prerak Kahaniyan : Bhavsingh Hirwani

भूमिका

भावसिंह हिरवानी छत्तीसगढ़ रायपुर-दुर्ग संभाग में एक सुयोग्य सब-इंजीनियर हैं और कहानी के माध्यम से एक तरुण चिंतक हैं। इंजीनियर होने से उनको व्यस्तता तो बहुत रहती है, फिर भी वे समय-समय से कुछ लिख लेते हैं। उनकी कहानी छोटो-छोटो, किंतु मार्मिक तथा चुभनेवाली होती हैं। उनकी सभी कहानियां जीवन के विविध पहलुओं के लिए प्रेरक हैं।

भावसिंह हिरवानी अपनी किशोरावस्था से ही मेर स्नेह-भाजन तथा निकट संपर्क में रहे हैं, अतएव पारख-प्रकाश त्रैमासिक पत्र में बराबर कहानी लिखते रहे हैं। उन्हीं कहानियों का संग्रह 'प्रेरक कहानियां' नाम से यह पुस्तक निकाली जा रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक से पाठकां को मनोरजन तथा सत्प्रेरणा—दोनों मिलेंगे।

मैं अपने प्रिय शिष्य भावसिंह हिरवानी को इसके लिए हार्दिक आशीर्वाद देते हुए शुभाकांक्षा करता हूं कि वे इस दिशा में सदैव साधनारत रहं और अपनी अच्छी-अच्छो रचनाओं से समाज को लाभान्वित करं।

कबीर पारख संस्थान
प्रीतमनगर, इलाहाबाद
4-3-1983 ई०

शुभचिंतक
अभिलाष दास

लेखक की ओर से

यह संग्रह पूज्य गुरुदेवजी की कृपा के फलस्वरूप आपके हाथों में है। इसमें संग्रहीत रचनाएं उनकी ही प्रेरणा के परिणाम हैं, जिन्हें अनगढ़े ढंग से लिख दी गई हैं। इनमें यदि कोई तकनीक या कहानी का कलेवर खोजे तो शायद न मिले।

पूज्य गुरुदेवजी का तो ऋणी हूं ही, उन सभी संत-महात्माओं, सज्जनों तथा देवियों का भी आभारो हूं, जिन्होंने मेरो रचनाओं की प्रशंसा करके मुझे लिखते रहने का संबल दिया है। पुस्तक के प्रकाशन व मुद्रण संबंधी भार वहन कर इसे सर्वसाधारण को सुलभ कराने में 'कबीर पारख संस्थान' के अधिकारियों न जो अमूल्य योगदान प्रदान किये हैं, इसके लिए मैं उन सबका कृतज्ञ हूं।

विनम्र

भावसिंह

विषय-सूची

1. बहाना	...	11
2. दुखिया सब संसार	...	17
3. कोरा उपदेश	...	22
4. उसका गर्व	...	26
5. मोहजनित यातना	...	31
6. मोहविद्ध	...	36
7. झुठलाया हुआ सच	...	40
8. मृग मरोचिका	...	45
9. सपूत या कपूत	...	50
10. गहन अंधकार और मोमबत्ती	...	57
11. कुसंग	...	63
12. जुगनू	...	69
13. रक्षक या भक्षक	...	74
14. इस मेज से उस मेज तक	...	80
15. छुआछूत	...	85
16. मातहत	...	88
17. दस्तूरो	...	93
18. आसरा	...	98
19. कमजोर आदमी	...	103
20. भगोड़ा	...	108
21. ईर्ष्या की आग	...	113
22. बाकी सब खैरियत है	...	115
23. दुख-अपना अपना	...	119
24. आसक्ति	...	124
25. संबल टट गया	...	126
26. हमारा धर्म ?	...	130
27. मापदण्ड	...	131
28. हनुमान जी की आंखें	...	132
29. पूछता हूं	...	134
30 .उसकी भक्ति	...	137
31 .अपने लिए	...	139
32. जब भगवान श्रीकृष्ण लाचार हो गये	...	141
33. जिज्ञासु	...	143
34. उन्हें मत सराहो	...	148
35. पुण्य खरोदिये	...	131
36. सस्ता नुस्खा	...	154
37. वापसी	...	156
38. राक्षस	...	162
39. मॉर्डन संन्यासी	...	164
40. पता नहीं पंछी किधर गयो र	...	165
41. अन्त समय कोई नाहीं	...	169

प्रेरक कहानियां

1. बहाना

समाचार सनते ही रामू बुझ-सा गया। झुरियों से भरा उसका काला स्याह चेहरा और भी बदतर हो गया। आंखों में ग्लानि और पश्चाताप के धुएं उमड़ आये। मस्तक पर पड़ी सिलवटं और गाढ़ी हो गयीं। मन एक विचित्र तड़पन से भर उठा। मानो घाव के अन्दर छोट-छोट अनगिनत घिनौने कीड़े कुलबुला रहे हो। आंखों में उतर आया अतीत, क्षण भर के लिए उसे विचलित कर दिया और वह कराह कर अपने कठिन खुरदर हाथों से बहते आंसुओं को धीर-धीर पोंछता है मानो खुद को ढाढ़स दे रहा हो।

स्वामी जी के आगमन से गाव का जर्रा-जर्रा एक शान्तिमय आनन्द में विभोर है। चारों ओर मोहरहित प्रेम प्रसर गया है। पता नहीं, क्यों उनके पदार्पण करते ही सार माहौल में प्रसन्नता की एक लहर-सी व्याप्त हो जाती है। सब कुछ नैत्यिक होते हुए भी अपूर्व लगने लगता है। कुछ क्षण के लिए ही सही, उस दमकती हुई तेज मूर्ति को देख यह संसार, शरोर सब कुछ क्षणिक और तुच्छ भासने लगता है।

लोग भाग-भाग कर उनके स्वागत की तैयारो कर रहे थे, जैसे निरन्तर भोगों के पश्चात उनमें स्वयमेव विरक्ति आ गयी हो। कामी, लोभी, भोगी और योगी को पृथक कर पाना संभव न था। सभी एक ही परिवेश में लिपट हुए थे। सबके गले में सफेद धागों में गुथी कण्ठी थी।

हर ऐसे व्यक्ति को देख रामू का मन बन्धन-मुक्त घोड़े की तरह बिचकने लगता। लोग तेजी से इधर-उधर आ-जा रहे थे; पर वह ज्येष्ठ की तपती दुपहरो की तरह थमकर निश्चल शांत बैठा था। वह एक विचित्र मनोयोग में डूबा घण्टों तड़पता रहा और नद में हिलते परछाईं की तरह अतीत उसके समक्ष डोल रहा था। रामू धीर-धीर उसकी तह में पहुंच गया। आज की ही तरह जीवन में उसे एक और मौका मिला था। उस दिन भी लोगों के चेहर पर बहार थी और आज ही की तरह वह दिन भी खुशी से महक रहा था।

तब वह जवान था और साथ में सुन्दर स्वस्थ युवा पत्नी भी थी। गांव में आये साधुओं के सत्संग से उसमें सुबुद्धि आ गयी थी और वह पुत्तू के साथ इस संसार को तृणवत समझ वैराग्यपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन बिताने को तैयार हो गया था।

आज जब स्वामी जी पधार रहे हैं तो पहली बार वक्त के व्यर्थ बीत जाने का अहसास उसे सबसे अधिक हो रहा है। बीती जिन्दगी पर उसे स्वयं को घृणा और नफरत-सी होन लगी। उसे लगता है यह जीवन अत्यंत कष्टदायी है। गृहस्थी मनुष्य को एक निश्चित दायर में बांध देती है और वह कोल्हू के बैल की तरह वहीं-वहीं घूमता रहता है। आज और कल में मात्र समय का व्यवधान रह गया है। पर इस सुबह-शाम के आने और जाने ने उसे बच्चे से जवान तथा जवान से बूढ़ा बना दिया है। हर वस्तु यथास्थान होने पर भी वह अपने आप में बहुत बड़ा फर्क महसूस करता है और हताशो की उसांसें भरकर रह जाता है।

लगाव में अभाव नहीं। सतत अभ्यास ने पुत्तू को विदेही बना दिया। वह तथागत की भांति एक रात चुपचाप सार परिवार को सोता छोड़ चला गया। रामू ने इसकी प्रतिक्रिया उसके परिवार में देखी तो वैराग्य से उसका चित्त फट गया। वह सोचने लगा—नाते, रिश्ते, मोह-ममता, प्यार, आकर्षण, क्या यह सब कुछ भी नहीं हैं। जगत क्या है? मोक्ष क्या है? परमात्मा कहां है? जो

प्रत्यक्ष है, उसे अदेख कैसे कर दें? मौत के पार किसने देखा है? मां-बाप, भाई-बहिन, प्रत्यक्ष लक्षित यह जगत झूठ है, तो क्या वह कपोल-कल्पित ईश्वर सत्य है? किसने देखा है उस जगतकर्ता को, जो अब तक मन की दुर्बलता की तरह छुपा हुआ है।

जो अदृश्य है, अगम है, अबोध है; क्या उसी के लिए भर-पूर खुशहाल परिवार को छोड़कर चले जाना त्याग है। मां-बाप छाती पीट रहे हैं। पत्नो अपनी तकदीर कोस रही है। उफ, अपने परिवार की यह दुर्दशा उससे नहीं दखी जायेगी। वह नहीं जायेगा, हरगिज नहीं जायेगा। पुत्तू बेवकूफ था सो चला गया।

वह अपने मन के बहलाव के लिए पूर्वजों की आश्रम-व्यवस्था की दुहाई देने लगता है, पर तभी उसके सामने स्वामी जी का मुस्कराता चेहरा उभर आता है।...''चार माह के नाजुक आनुकौलव को स्वामी के चरणों में समर्पित करते उसे अपार हर्ष हुआ था। इस पर स्वामी जी मुस्कुरा दिये। बोले–''तुम्हारो तरह हम भी चाहते हैं कि हमारा बेटा साधु हो जाये।'' राम् स्वामी जी का आशय समझकर शर्म से झुक गया और उसने वायदा किया कि मुन्ना के होश संभालते ही वह इस दुखिया संसार से निवृत्ति ले लेगा।

अब उसका लड़का रघू बड़ा होकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा है। स्वामी जी को दिया वचन उसे प्रतिपल सालता रहता है। एक अजीब-सी टोस हमेशा उसके मन में उठा करती है, जिसका निदान वह ढूंढ़ नहीं पाता। वह इस कष्टमय जीवन को छोड़ देना चाहता है, पर जैसे किसी अदृश्य तंतु से बंधा वह चाह कर भी जा नहीं सकता।

वह प्रत्यक्ष देख पा रहा है कि समय का आंचल बड़ी तेजी से उसके हाथ से फिसलता जा रहा है। वह एक विचित्र कसमकस में पड़ा छटपटा रहा है। उसे लगता है–यह साधु जीवन एक विरक्त पलायनवादी का जीवन है और यह गृहस्थ जीवन मानो हर पल उसे यथार्थ से दूर ढकेलता जा रहा है।

एक शाम वह आराम कुर्सी पर लेट सुपाड़ी चबाते हुए सोच रहा था–अब उसे चल ही देना चाहिए। बेटा नाबालिग नहीं रहा। वह घर-गृहस्थी संभाल सकता है। पत्नो बेटा के सहार गुजर-बसर कर सकतो है।

रामू जब भी जाना चाहता है, कोई न कोई रुकावट उसके सामने आ जाती है और वह लाचार हो जाता है। वह निश्चय-सा करते हुए बोला–''मैं जा रहा हूं, पारो! अब तुम अकेली नहीं रही। रघु भी समझदार हो गया है।'' पास में चावल चुनती हुई पारो एकबारगी चौंककर बोली, ''कहां...?''

''हाय राम! मेर तो करम ही फूट हैं, जब देखो तब जाने की ही बात। जाना ही था तो शादी क्यों की थी? बाल पक गये पर अकल नहीं आयी''–वह फफककर रो पड़ी। ''हां जाओ....जाओ, रोकता कौन है? मर्द हो तो मेरा गला घोंट दो और चले जाओ, फिर तुम्हें कोई नहीं रोकेगा...अर लल्ला सुना....'' वह रोते-रोते अपने देवर को पकारो।

''अर बाबा, सुनो तो....लल्ला को क्यों बुला रही हो, मैं जा थोड़े ही रहा हूं? मैं तो पूछ रहा था''–वह मनौती करने लगा–''तुम तो फिजूल ही बतंगड़ बना रही हो।''

''हां, मैं तो फिजूल ही रो रही हूं, पर कहे देती हूं, फिर कभी जाने का नाम नहीं लेना।'' वह जरा नरम होकर बोली–''और तुम्हार बगैर हमारा है ही कौन? फिर रघू का विवाह भी तो करना है–'' वह फिर सुबकने लगी।

रामू फिर नहीं जा सका। अब उसकी एक ही तमन्ना शेष रह गयी है। वह अपने युवा पुत्र की शादी कर देना चाहता है, ताकि रघू सुखी जीवन बिता सके और वह सब झंझटों से मुक्त हो चैन से शेष आयु साधु रूप में यापन कर। उसे लगता है कि इसके साथ ही उसके गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों की इति हो जायेगी। वह शादी की तैयारो में जुट जाता है।

एक लम्बे अरसे के बाद लौटा पुत्तू। रामू के चेहर पर दुर्भिक्ष से प्रताड़ित खेत की तरह वीरानी देखा, तो कह ही दिया–''राम, क्या अब भी गृहस्थी से मन नहीं भरा?'' औचक ही पूछे गये प्रश्न से रामू सिटपिटा-सा गया। बगलें झांकते हुए उसने कहा–''नहीं प्यार! केवल रघू की शादी कर देने की चाह शेष रह गयी है, फिर तो मेरो छुट्टी ही समझा।''

पुत्तू के चेहर पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट आकर चली गयी, ''तुम्हार अभाव में क्या रघू की शादी नहीं होगी?''

''हो तो जायेगी....पर।'' रामू पराजित स्वर में कहा।

''पर क्या?'' पुत्तू गम्भीर हो गया, ''तुम्हारा मोह मिथ्या है रामू! सत्य को परखने की कोशिश करो। अतिथि की तरह मौत कभी भी आ धमकेगी, तब तुम्हारो सारो योजनाएं ताक में धरो रह जायेंगी।''

''कैसे करूं, पुत्तू!'' वह टट हुए स्वर में इस तरह बोला, मानो घायल सैनिक सम्पूर्ण शक्ति से अपना अन्तिम प्रहार कर रहा हो।

''जो अपना नहीं, उस पर इतनी प्रबल ममता क्यों?''

पुत्तू ने जैसे वार जारो रखते हुए कहा, ''इस स्वार्थी कुटम्ब का मोह त्यागो। क्यों उस चीज से फायदा उठाना चाहते हो, जिसमें घाटा ही घाटा है?''

फिर वह दिन भी आ गया जिसकी रामू को प्रतीक्षा थी। रघू का विवाह हो गया। पर रामू, वह फिर नहीं जा सका। बहू-बेटा को खुशहाल देखने की लालसा ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया। वह सोचने लगा–क्यों न एक-दो वर्ष और रह लिया जाये। इस तरह आश्रम व्यवस्था का भी पालन हो जायेगा तथा स्वामीजी को दिया वचन भी खाली नहीं जायेगा।

संतों को देख उसके ज्ञानचक्षु उघर जाते और उनके लोप होते ही उस पर शनैः-शनैः फिर सांसारिकता की परत जमने लगती। स्वामी जी और पुत्तू को दिया वचन यद्यपि उसके अन्तर को कचोटता तथापि इसका प्रभाव धीर-धीर मिटता जा रहा था और वह पुनः झूठे मायाजाल के सागर में डूबने लगा था।

आज रामू साठ वर्ष का हो गया है। सब तरफ से चित्त हटा, आज वह इस मायावी दुनिया को त्याग देने का प्रण करके उठा। वह सामान बांध घर से निकल पड़ा। ड्योढ़ी के बाहर कदम रखते ही पत्नो चिल्ला उठी–''अजी! कहां भागे जा रहे हो।'' उसने फूल से बच्चे को उसकी बाहों में डालते हुए कहा–''इसे कौन संभालेगा?'' तभी उसकी पुत्र-वधू भी आ गई। वह सलज्ज नेत्रों से भर स्वर में प्रार्थना करती है, ''हां पिताजी! आप चले जायेंगे तो इसे कौन सहारा देगा?''

रामू अपनी पराजय पर खीझ उठा। पर उसे लगता है सचमुच सबको उसकी जरूरत है। वह अपने परिवार को छोड़कर नहीं जायेगा, कभी नहीं जायेगा।

''बाबा-बाबा!'' उसका पोता झकझोरकर रामू का चित्त भंग कर देता है–''साहेब बुला रहे हैं।'' वह सोचता है–''जिन्दगी भर झूठे बहानों से खुद को तसल्ली देता रहा है, पर आज सत्य के सामने कैसे सिर उठा सकेगा? अच्छा बेटा, चल....'' वह एक गहरो निःश्वास लेकर छोड़ता है और हाथ मलते हुए बच्चा के पोछे-पीछे चला जाता है।

2. दुखिया सब संसार

उस रात मैं देर तक सो नहीं सका था। चाहकर भी नींद नहीं आयी थी और मैं बेचैनी से करवटं बदलता रहा था। इच्छित-वस्तु का अप्राप्य होना इतना त्रासदायक हो सकता है, इसका मुझे भान न था। असफल अहेरो की तरह एक सप्ताह उत्तर बस्तर के जंगलों में घूमकर लौटा था और सारा शरोर दर्द से व्याप्त था। बीमार पत्नो सामने खाट पर औंधी लेटो हुई थी। उसके मुख पर उकता देने वाली खामोश उदासी छाई हुई थी और मुन्ना आयताकार क्षेत्र के द्विभाजक की तरह मेरो खाट पर पड़ा हुआ था।

अत्यन्त कष्ट के पश्चात क्षणिक आराम की उपलब्धि बड़ी मधुर होती है। भयानक जंगली दलदल युक्त पगडण्डी में साइकिल घसीटते-घसीटते घर पहुंचने की अनुभूति बड़ी सुखद लग रही थी। रास्ते पर चलते-चलते....घर में बीबो की मुस्कान में डूबे स्वागत की आकांक्षा मन में गुदगुदी उत्पन्न कर रही थी। सात दिनों तक क्रमबद्ध घोट्ल में जमीन पर लोटते समय हर रोज मैंने पापी पेट को धिक्कारा और अपनी फूटो तकदीर को रोया था।

सावन का महीना था, पर शाम बड़े दुखो मन से रात्रि में परिणत हो रही थी। घर पहुंचते-पहुंचते सियार हुंआने लगा था और घरों से प्रकाश खिड़की की सलाखें लांघकर बाहर आ रहा था। कई मन थकान का बोझ लिए घर में गया तो पत्नो फ्ट बरतन की तरह झनझना उठी—''अकेले तुम ही नौकरो करते हो....बीबो-बच्चों की तो परवाह ही नहीं। खूब खिला चुके, अब पहुंचा दो मुझे मायके....''

मूर्ख पत्नो को दो चांट रसीदने को इच्छा को मैं दबा न सका, पर तुरन्त उसे बिस्तर पर लुढ़कते देख मेरा सम्पूर्ण क्रोध एकबारगी खत्म हो गया।

भूखा पेट मुंह से निवेदन करते-करते दम-तोड़ रहा था। टांगें भी थककर चूर-चूर हो गई थीं। मैं अपराधी की भांति रसोईघर में गया तो देखा सभी भूख से व्याकुल आंखें डबडबाये खामोश पड़े हैं। चूल्हे को ईंधन नहीं मिला था और बेचारो पतीली न जाने कब से उपवास कर रही थी। यदि इनके हाथ-मुंह होते तो ये चिल्लाकर हाथ ठोक-ठोककर कहते कि हमें खाना दो, अन्यथा हम हड़ताल कर देंगे।

आज कोई मुझे पूछता कि जीवन क्या है तो मैं सम्पूर्ण शक्ति के साथ कहता कि जीवन दुख है, केवल दुख, दुख के सिवा कुछ भी नहीं है। अब चूल्हा धीर-धीर टिमकने लगा था। मैंने पतीली में चावल और दाल (खिचड़ी) बनने को चढ़ाकर राहत की सांस ली।

भूख और थकान का जोर बदन को तोड़े डाल रहा था। घर की जर्जर हालत देख मैं खुद पर ही खीझ उठा। पतीली में खिचड़ी उछल-कूद कर रही थी और मेर अन्दर आवेग खिचड़ी की तरह उबल रहा था। मुझे इस पक्के मकान से दूर, गांव के घोट्ल में मिट्टी के ढेलों पर रखी पतीली में

उबलते दाल-चावल की याद सताने लगी, जहां मैं अफसराना अन्दाज में बाईं करवट लेट, इत्मीनान से देखता रहता हूं और मुझे बिना कुछ किये पत्ते की थाली तथा कटोरो पर खाना मिल जाता है।

जब कोई भट्ठीवाला मुझे अपना हिमायती समझ नशे में धुत्त अर्धनग्न आदिवासी को मेर समक्ष लाकर शिकायत करता है कि इसने मना करने के बावजूद भी अपना अंगोछा गिरवी रखकर शराब पी है तो मैं उस जी भर कर गालियां देता हूं–''मूर्खो, तुम सब गवांर हो, अपढ़ हो, जड़ बुद्धि हो, जंगली हो, जानवर हो, इसलिए दुखो हो, मुझे देखा, मेर जैसे तुम्हार गांव में आने वाले अनेकों चालाक, धूर्त, होशियार, पढ़े-लिखे सभ्य मनुष्यों को देखो, जो तुम्हें ठगकर चले जाते हैं। वे कितने सुखी हैं। तुम्हार पास क्या है? न पहनने को कपड़े हैं न खाने को भोजन है; और उनके पास क्या नहीं है? सुख के सभी उपादान उपलब्ध हैं। साइकिल है, घड़ी है, फिल्मी गाने सुनने को रडियो है, पहनने को अच्छे-अच्छे भड़कीले-चमकीले एक से एक बढ़कर खूबसूरत बहुमूल्य कपड हैं और तुम लोगों को लूटने के लिए पर्याप्त अक्ल भी है।''

एकाएक मुझे लगता है कि नशे में धुत्त वह शराबी आदिवासी भयानक अट्टहास कर रहा है। उसके वीभत्स सरसों तेल की तरह काले, चिकने चेहर पर बेहद सफेद तिरछे दांत विचित्र ढंग से बाहर निकल आये थे और वह लगातार मानो मेरो मूर्खता पर हंसे जा रहा था। मेरा–क्रोध और पश्चाताप से तांबे की तरह तपा हुआ–चेहरा मलिन हो गया। मैं बेचैन हो उठा। जी में आया कि चीखकर कह दूं, ''मूर्खो, तकदीर को कोई बदल नहीं सकता। अभी मैं थोड़ा दुखी हूं, तो क्या हुआ। तुम लोगों से लाख गुना अच्छा हूं। मेर पास क्या नहीं है?.....मेर पास सब कुछ है.....।''

वह शराबी हंसता ही जा रहा था–जैसे मैं झूठ बोल रहा हूं और मेरा झूठ बोलना उसे विदित हो। मैंने कुपित होकर हाथ उठाया तो मुन्ना के रोने की आवाज आयी और मेरो तन्द्रा भंग हो गयी। खिचड़ी पक गई थी और उसमें से जलने की बू आ रही थी।

जब मैं भोजन से निवृत्त हो चुका तो दूर कुत्तों के रोने की आवाज आ रही थी। मुझे लगा मेरो तरह शायद ये कुत्ते भी भूखे हैं। भूख से बेचार रो रहे हैं। मैंने अब तक बहुत कुत्ते देखे हैं। कई रूपों में, कई रगों में, कई तरह के, पर कुत्तों को हंसते हुए कभी नहीं देखा। शायद रोना ही इनकी नियति है और इसीलिए रोते ही दिखते हैं। एक साथ आ गई प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण मैं उकता चुका था सो स्वस्थ मनोरजन के लिए रडियो की ओर हाथ बढ़ाया। बटन खोलते ही एनाउन्सर की आवाज आयी, ''अब आप 'लाट साहब' के गाने सुनिये....।''

मुझे लगा सभी मेरा उपहास करने पर तुले हैं। मैं क्रोध से झल्लाया, ''तुम्हार चाचा के गाने सुनेंगे....बड़ा आया 'लाट साहब'। हमें नहीं सुनने 'लाट साहब' के गाने....।'' मैंने उसी झटके से रडियो बन्द कर दिया।

मन की रजिश मिटाने के लिए टबल पर रखा 'नव भारत' उठाया तो चित्त और व्यग्र हो गया। अखबार में छपा था–''बंगला देश में पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा भीषण नर-संहार जारो है.....इस वक्त वहां इतिहास की सबसे दुखद घटनाएं घट रही हैं।'' मेरो मानसिक अशान्ति बढ़ती ही जा रही थी। हताश झुंझलाकर मैंन पुनः रडियो खाला तो मुकेश रो रहा था.....''कोई रोये, कोई गाये, कैसा तेरा संसार मालिक?'' अब धैर्य का बांध टूट चुका था। जी में आया कि रडियो को उठाकर पटक दूं ताकि उसकी बोलती ही बन्द हो जाये, पर मुझे पागल कुत्ते ने नहीं काटा था। मैंने शराब भो नहीं पी थी न ही भांग खायी थी, सो नहीं पटका। पांच सौ रुपये कम नहीं होते। आखिरकार खीझकर चुप हो गया।

नीरसता के कुछ क्षण तेजी से व्यतीत हो गये। कमर के बाहर दादुर बोल रहा था और शायद मेढकी भी उसका साथ दे रही थी। यह कह पाना कठिन है कि कितने झींगुर समवेत स्वरों में चीख रहे थे। वर्षा की बूंदें टोन के छप्पर पर 'टप...टप....' टपक रही थीं, मानो अतीव व्यथा से मेघ के आंसू रिस रहे हों। मैंने बिस्तर पर अच्छी तरह लेटते हुए पहलवान की तरह मोटो बीबो की ओर घूरा, तो वह गौरया की तरह बारोक आवाज में बोली, ''घर से छोटो ने पत्र लिखा है....मेज की दराज में पड़ा

होगा..... ।'' उसने करवट बदली तो चारपाई चरमरा कर शान्त हो गयी।

मेरा सम्पूर्ण ध्यान एकबारगी पत्र पर केन्द्रित हो गया। झट उठा और चट ले आया। पत्र खोला तो पढ़ा नहीं गया। बार-बार उन्हीं शब्दों पर निगाह फिसल कर रह जाती थी। छोटो ने लिखा था—''भैया, आप कब आयेंगे....बापू नित्य टटते जा रहे हैं.... वे खूब शराब पीते हैं....दिन भर खों-खों....करते रहते हैं....और नशे में धुत्त होकर मां को पीटा करते हैं.....मां गौ की तरह सब कुछ सह लेती हैं। उसमें प्रतिकार करने की शक्ति ही नहीं है....भैया आप आयेंगे न?...जल्दी आना.... ।''

पत्र पढ़ते ही मन और बोझिल हो गया, जैसे मुझ पर दुख का पहाड़ टट गया हो। आंखें छलछला गयीं। मां का सौम्य रूप क्षण भर को मेर सामने उभर आया। जी हुआ कि फफककर रो पड़ूं। छोटो मुझे बेहद चाहती है। मां के लिए क्या कहूं, मेर पास शब्द नहीं हैं। मैं पत्र को एक किनार रखते हुए बुदबुदाया—''तुझे कैसे सांत्वना दूं छोटो! किस मुख से कहूं कि मैं खुद ही बहुत दुखो हूं।''

इसी बदहवासी में न जाने कब मैं निद्रा की गोद में समा गया। उनींदी आंखों ने जो सपने दिखाये वे बड़े भयानक थे—एक बूढ़ा भिखारो भिक्षा न मिलने पर मुझे गालियां दे रहा था। इसी तरह के दो-तीन और बूढ़े मेर समक्ष बैठे खों...खों कर चिलम के कस खींच रहे थे। मैंने उनकी ओर से दृष्टि हटाकर अपने ऊपर निगाह फेंकी, तो देखता हूं कि खेत के ठूंठ डण्ठल की तरह मेर सफेद खसखसी दाढ़ी उग आई है। गाल पिचक गये हैं और चिकने गोर चेहर पर झुरियां पड़ गई हैं।

बीबो न जाने कहां गायब हो गई है। एक नन्हा-सा अबाध शिशु मेर सामने दूध के लिए बिलख-बिलख कर रो रहा है और मैं विवश-सा यह सब दारुण दुख पथराई आंखों से देख रहा हूं। जब मैंने अपनी जर्जर बाहें बच्चे को उठाने के लिए बढ़ाई तो अचानक मुन्ना जोर-जोर से रोने लगा। मैं संभलकर उठ बैठा। मुन्ना रोते-रोते खांसने लगा और फिर उसने बिस्तर पर ढेर-सारो उल्टियां कर दीं।

मैं उसे बिस्तर से उठाते हुए भर गले से बोला (जैसे वह मेरो बात को समझ रहा हो)—''मत रो बेटा,.....यह सम्पूर्ण संसार ही दुखमय है.....यहां कोई सुखी नहीं है.....इस दुनिया में केवल हम ही दुखो नहीं हैं.... ।''

---

3. कोरा उपदेश

जब किसी ने आकर चुपके से गुहा के कान में कुछ फुसफुसाया तो वह उत्तेजना से भर उठा। उसकी आंखों से निष्ठुरता टपकने लगी। चेहरा तमतमा गया। जैसे किसी ने अंगार पर पड़ी राख की परत उघाड़ दिया हो। उसने लापरवाही से तुड़े-मुड़े नोटों को पैर के नीचे से उठाया और जेब के हवाले कर आगे बढ़ गया।

उस बड़े आंगन में लोग अणु के केन्द्र में केन्द्रित शक्ति से आकर्षित परमाणुओं की तरह वृत्ताकार झुण्डों में विभक्त जगह-जगह ताश खेल रहे थे। वह बलपूर्वक उस व्यक्ति द्वारा इंगित झुण्ड में लोगों को कुहनाते हुए प्रवेश किया जैसे किसी ने अणु को विखंडित करने की कोशिश की हो। उसने लपककर राजू को उठाया और उसके बायें गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। राजू के हाथ से ताश के पत्ते गिरकर बिखर गये। वह जमीन पर गिरा नहीं हड़बड़ाकर संभल गया। उसने झपटकर पुन: कमीज की कालर पकड़ी और दांत किटकिटाकर चिल्लाया, ''नीच, तुझे रुपये की जरूरत थी तो मांगा होता, लेकिन यह कुकर्म तूने क्यों किया; बोल, क्यों किया?'' उस निर्दय ने दूसरा थप्पड़ फिर उसी गाल पर दे मारा।

अब भी लड़का नहीं रोया बल्कि यों खड़ा रहा जैसे उसने कोई अपराध ही न किया हो। गुहा क्रोधित स्वर में फिर दहाड़ा—''अबे भागता है कि और दूं?'' पर उस नासमझ बालक ने क्रुद्ध बाप के तीसर थप्पड़ की परवाह न कर उसकी आज्ञा की अवहेलना की, और भागा नहीं, अपितु कछुए की भांति धीर-धीर वहां से चला गया।

गुहा ने उस अड़ियल बालक के आंखों से ओझल होते ही भट्ठी में जाकर खूब ठर्रा पिया और फिर अपने धन्धे में लग गया। वही छक्का और सत्ता....गुलाम और बेगम....।

जब उसका नशा उतरा तो रात आधी के करोब ढल चुकी थी और उसका हाथ खाली हो चुका था। वह हाथ मलते हुए खड़ा हो गया। भूख के मार पेट में मरोड़ उठ रही थी। जब उसकी सम्पूर्ण चेतना क्षुधा निवृत्ति पर ही केन्द्रित हो गयी तब उसने घर की सुधि ली। घर पहुचा तो पत्नो और राजू दोनों ही जाग रहे थे। वे चूल्हा के इर्द-गिर्द लगकर बैठे हुए थे। उन्हें देख आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि दोनों काफी देर तक रोते रहे हैं। उसने भूखी आंखों से पत्नो को देखा और खाना मांगा पर उनमें से कोई हिला तक नहीं। वह फिर गरजा तो पत्नो को उसका यह आधार-रहित क्रोध अच्छा नहीं लगा। वह बिफरकर बोली ''खाना मांगते शर्म नहीं आती.....कहां से लाऊं? खुद तो कौड़ी कमाते नहीं और जो दिन भर रोजी मजूरो करके लाती हूं उसे भी छीन-झपटकर जुआ में झोंक देते हो....।''

भूख की जलती ज्वाला में पत्नो की ये कड़वी बातें घी का काम कर गई। वह क्रोध से पागल की भांति पत्नो को मारने दौड़ा तो राजू सामने आकर तीसरा थप्पड़ भी अपने ऊपर झेल लिया और औंधा मुंह जमीन पर जा गिरा। उठा तो उसके मुंह से खून गिर रहा था। मां ममता की मूर्ति अपने कलेजे के टकड़े को तड़पता देख विकल हो उठी। वह सिसकते हुए आहत बालक का मुंह धुलाकर भोजन के लिए मनौती करने लगी पर राजू ने जैसे मुंह न खोलने की कसम खा रखी थी। वह उठा और भोजन की थाली भेड़िये की तरह भूखे बाप के सामने रख दी। मां बेचारो मना करती ही रह गई। और फिर मां-बेट दोनों ने आंसू पीकर रात बीता दी।

सबेर राजू ने अपनी आदत के विपरोत देर तक बिस्तर नहीं छोड़ा। मां के पूछने पर भी उसने कोई जवाब नहीं दिया और करवट बदलकर लेट रहा। अबकी बार मां की आवाज कुछ सख्त हो गई, ''राजू, तू अभी तक सोया है, क्या पढ़ने नहीं जायेगा?''

''नहीं....।'' उसने अनमने मन से कह दिया—''कुछ भी तो नहीं है मां, क्या लेकर पढ़ने जाऊं? न किताब, न कापी। और जगह-जगह पैबंद लगे ये कपड़े। मेरा इस तरह रहना तुम्हें अच्छा लगता है मां?'' मां सचमुच निरुत्तर हो गई, वह कुछ न बोली। शायद आंखों में उमड़ते आंसू को छिपाकर कमर से बाहर चली गई।

आज गुहा की दृष्टि जब उस हठी बालक पर पड़ी तब वह ठर्रा का एक घूंट पी चुका था। उसे देखते ही शराब का कसैला कड़वा स्वाद बेहद फीका हो गया। वह गुस्से से तिलमिला गया। राजू को मारने के लिए शराब भरा गिलास उठाया तो एक ने झट उसका हाथ पकड़ लिया, बोला, ''अपने गुनाह की सजा उसे क्यों दे रहे हो; शर्म आती है तो यह घृणित कार्य छोड़ क्यों नहीं देते?'' गुहा ने उस व्यक्ति की ओर गिद्ध दृष्टि से घूरा और राजू के ऊपर झपटा–''आज तो तेरो खाल खींचकर ही रहूंगा.....।''

पर इस बार राजू होशियारो दिखा गया। वह भाग खड़ा हुआ, गुहा उसके पीछे दौड़ा। घर पहुंचा तो राजू बुरो तरह हांफ रहा था। वह मां को पकड़कर खड़ा हो गया। गुहा पहुंचा तो उसकी पत्नो बरस पड़ी, ''क्यों बच्चे की जान लेने पर तुले हुए हो।'' वह आगबबूला हो चिल्लाया, ''आज इसे जिन्दा नहीं छोड़ूंगा...।''

''मार डालो बाबू, ऐसे जीने से तो मरना ही अच्छा है....।'' राजू मां का आंचल छोड़ सामने आ गया। राजू की बात सुन उस पापी का उठता हाथ अचानक रुक गया। वह जोर से चीखा, ''क्या बकता है?''

''आप शराब क्यों पीते हो बाबू, क्यों जुआ खेलते हो?'' ''नासमझ छोटा मुंह बड़ी बात करता है। मैं कमाता हूं कि तुम कमाते हो?''

''नहीं बाबू....मैं नहीं कमाता....पर जब मैं पढ़ने जाता हूं तो सब लड़के मेर इन मैले-कुचैले, फट-पुराने कपड़ों को देख पूछते हैं, राजू तेर बाबू क्या करते हैं; क्यों इस तरह रहते हो....?'' कोई कहता है, 'मेर पिताजी डाक्टर हैं, मैं बड़ा होकर डाक्टर बनूंगा....।' कोई कहता है, 'मेर पिताजी इंजीनियर हैं, मैं इंजीनियर बनूंगा....।' 'मेर पिताजी मास्टर हैं, मैं मास्टर बनूंगा।' सब पूछते हैं बाबू–'तुम्हार पिताजी क्या हैं, राजू तुम क्या बनोगे?' राजू पत्थर के बुत की तरह खड़े बाप से पूछता है, 'मैं क्या कहूं बाबू.....मेर पिताजी तो शराबी हैं....जुआड़ी हैं....मैं क्या बनूंगा बाबू?'

''नहीं बेटा...नहीं.....तू...शराबी नहीं बनेगा.....।'' जैसे पत्थर की वह मूर्ति हिलने लगी, 'कह देना तू बहुत बड़ा आदमी बनेगा....बहुत बड़ा....। अब मैं जुआ नहीं खेलूंगा बेटा....शराब भी नहीं.....मेर लाल, तूने मेरो आंखें खोल दीं....।' शेष शब्द सिसकियों में डूबकर रह गये। जाने गुहा ने आगे और क्या कहा।

4. उसका गर्व

जेठ की एक भरो दुपहरो में जब किसी ने उसका किवाड़ खटखटाया तो आलस से रामदास की आंखें झपक रही थीं। धूप आंखें निकाल रही थी और घर के बाहर मानो आकाश से अंगार बरस रहे थे। वह अनिच्छा से उठा और हलक के नीचे एक घूंट पानी उतार किवाड़ खोल दिया। आगन्तुक को देख अकस्मात उसकी बूढ़ी आंखें आश्चर्य और खुशी से चमक उठीं। आगन्तुक ने झुककर चरण-स्पर्श किया तो उसकी सजल आंखें छलछला गईं। उसे छाती से लगाते हुए गदगद स्वर में फुसफ़साया, ''बहुत देर कर दी बेटा....।'' शेष शब्द उसके गले में फंसकर रह गये। सन्तोष के चेहर पर दुख अथवा करुणा का कोई भाव नहीं उभरा। वह निर्द्वन्द्व निर्लिप्त बना भीतर चला गया।

वर्षों बाद अपने विद्वान पुत्र को देख रामदास का सीना गर्व से फूल गया। दरअसल आज उसका संकल्प पूरा हुआ था। जीवनभर की मेहनत फलीभूत हुई थी। वह ड्योढ़ी पर खड़े-खड़े ही अपने भाग्य को सराहा और पत्नो को कोसते हुए भीतर आ गया, 'तू समय से पहले ही चली गई र अभागन! वरना आज अपनी मेहनत को साकार मूर्तरूप देख फूली नहीं समाती।'

सन्तोष जमीन पर बैठकर सुस्ताने लगा। रामदास ने दायीं तर्जनी से गाल पर अनायास लुढ़क आये आंसू को ढकेल दिया और चटाई बिछा दी। हाथ-मुंह धोने को पानी लाया फिर रसोई में जुट गया। कमर में उमस भरो हवा जैसे थम गई थी। गरमी से कमर की छत, दीवाल, यहां तक कि जमीन भी तप रही थी। पर इस भौतिक ताप से अप्रभावित रामदास असाधारण स्फूर्ति से अपने कार्य में तत्पर था।

वह मन ही मन अपनी विजय पर मुस्करा उठा, जैसे जीवनभर की खुशियां आकर उस एक ही क्षण में सिमट गई हों। फिर अचानक उसकी हंसी जैसे मर-सी गई, उसके चेहर पर तपती दपहरो की तरह खामोश उदासी छा गई। शायद उसे लाजो याद आ गई थी। जो कुछ महीने पूर्व ही इस पार्थिव संसार में उसे संतोष के साथ सिसकने को छोड़ गई थी।

पर बेचारा करता भी क्या? सन्तोष को रुपये न भेजता तो उसके जीवन का अथक परिश्रम मटियामेट हो जाता। सच कहा जाय तो रामदास दुविधा के इस चरमबिन्दु पर पहुंचकर विचार-शून्य हो गया था। एक ओर पत्नो का जीवन था दूसरो ओर शुल्क के अभाव में सन्तोष की सफलता पर निहित डगमगाता आदर्श। आखिर अपने आदर्श के लिए उसने पत्नो के जीवन को ताक पर धर ही दिया। उसने लाजो को प्रारब्ध पर छोड़ दिया था। अब उसे एक ही बात का मलाल है कि लाजो औषधि से वंचित रह गई थी।

तो क्या हुआ? यह महान उपलब्धि क्या कम है? सोचते-सोचते उसक अधरों पर मुस्कान थिरक उठी। आज वह चौबे का बच्चा शर्म से डूब मरगा जो सरआम मेरो इज्जत पर कीचड़ उछाला करता था। रुपये न देता न सही पर चार आदमी के बीच जलील तो न करता, ''रामदास, दिवास्वप्न मत देखो। छोट मुंह बड़ी बात अच्छी नहीं लगती। पता नहीं अपनी औकात क्यों भूल जाते हो। कोयला कभी उजला नहीं हो सकता। नीच कभी बड़ों का दर्जा पा सका है? गांठ में अधेला नहीं और महलों का ख्वाब देखने चला है....।''

उस दिन रामदास ने सुन लिया। बेट के लिए ही सही; उसने हाथ फैलाकर अपने को छोटा कर लिया था। इसीलिए सुन लिया। वह चौबे का यह उलाहना सुन तिलमिला कर रह गया। जब उसने देखा उसके समाज ही के अभावग्रस्त बूढ़े लोग उसी की तरह कुछ पाने के लोभ में यह अपमान सुनकर भी हीनतापूर्वक सिर झुका लिए हैं तो वह चुपचाप बाहर आ गया। उसे समाज में व्याप्त अपनी हीनभावना और गिर मनोबल को देख बहुत ग्लानि हुई। तभी उसने निश्चय किया एक दिन पण्डित चौबे को वह जरूर मुंहतोड़ जवाब देगा।

वह भी कैसे दिन थे....रामदास रसोई का काम निपटाते हुए सोचने लगा, विगत कितना दुखमय था। सन्तोष को शहर भेजते ही अनावष्टि से सारो हरियाली सूख गई। धरती ने खेतों पर फेंका

बीज भी नहीं लौटाया और इस विपत्ति से रामदास का मनसूबा ऊपर टग गया। तब उसे लगा था—यह निगोड़ा ऊपर वाला भी शायद यही चाहता है कि हम पिछड़े ही रहें, इसी तरह मुरदों का जीवन जोते हुए, समाज में उपेक्षित बनकर। पर वह इसे चुनौती मान तनदेही से अपने उद्देश्य की पूर्ति में जुट गया। लाजो के साथ कठोर परिश्रम करके शरोर को तोड़ डाला और पेट काट-काटकर सन्तोष को रुपये भेजता रहा।

कभी-कभी लाजो सन्तोष के चरित्र के सम्बन्ध में शंकालु बात कहती तो रामदास उसे डपट देता, ''औरों की तरह तेरो हीन भावना भी कभी नहीं जायेगी। सन्तोष मेरा बेटा है, ऐसा कभी नहीं हो सकता।''

''फिर भी इस उम्र का क्या भरोसा? कब पग बहक जाय, क्या कहा जा सकता है?'' लाजो कुतर्क करती।

और सचमुच रामदास के विश्वास के विपरोत अयाचित सुख पाकर भी सन्तोष का चरित्र नहीं डगमगाया। वह कभी-कभी चटाई पर निर्विकार लेट हुए सन्तोष को कनखियों से देख लेता था। अबकी बार उसने जरा गौर से देखा सन्तोष कुछ उदास जरूर था पर अब तक वह रोया नहीं था। उसे आश्चर्य हुआ, मां मर गई, वह भी उसी के लिए और बेटा को दुख भी नहीं हो रहा है? दो बूंद आंसू भी नहीं गिर। उसने स्मरण दिलाया—''तुम्हारो मां अचानक चल बसी बटा....।''

''यह कैसे हुआ बाबू?''

''दवा न दे सका....।''

''क्यों?''.....

''पैसे न थे।''

''मुझे पैसे क्यों भेज दिये?''

''क्या तुम्हें जरूरत नहीं थी।.....''

''पर मेरो जरूरत इससे बड़ी नहीं थी।''....

''.....'' एक विक्षिप्त खामोशी।

''जीवनपर्यंत साथ बने रहने का मोह मिथ्या है बाबू।'' सन्तोष का स्वर उभरा, ''बीते पर सोच व्यर्थ है। संसार की हर एक चीज मायावी है। अनित्य है। इनसे विशेष लगाव दुखदाई है।''

''यह तू क्या कहता है?''

''सच कहता हूं बाबू.....यह सब छूटने वाली हैं, क्षणिक हैं। धन और यश दोनों ही बेड़ियां हैं। दोनों का लोभ बन्धन के हेतु हैं। इनका वियोग अवश्यंभावी है। मौत एक कट सत्य है जिसे हम झुठला नहीं सकते। शोक, मोह अर्थहीन हैं, त्याज्य हैं। आपके आज्ञानुसार मैंने विद्या अर्जन कर ली, अब आगे क्या आज्ञा है?''

''अब अच्छी-सी नौकरो कर लो बेटा। उस ढोंगी चौबे को पता तो चलेगा कि हम छोटो जाति वाले भो बड़ी जगह पर पहुंच सकते हैं।''

''.....'' सन्तोष कुछ न बोला।

''तूने मेरो लाज रख ली बेटा। आज मैं उस अभिमानी को बता दूंगा कि कोई जाति से बड़ा नहीं होता। कर्म उसे बड़ा बनाता है।'' ''नहीं बाबू.....'' सन्तोष ने तनिक प्रतिरोध करते हुए कहा, ''इसकी आवश्यकता नहीं, वह भूला हुआ है, खुद ही समझ जायेगा। आप आज्ञा दें तो मैं गांव में रहकर ही समाज-सेवा का कार्य करूं। अपने जाति-समाज में व्याप्त हीनभावना को निकालने का प्रयत्न करूं....।''

''मेर अथक परिश्रम का यही फल?''

''जरा सोचो बापू, नौकरो करूंगा तो केवल अपने लिए ही जीऊंगा पर इस तरह तो मैं समाज के

लिए, देश के लिए, औरों के लिए भी जी सकता हूं।''

''मैं तुमसे यही चाहता था सन्तोष। मैं बहुत प्रसन्न हूं.....।'' खुशी से रामदास की आंखें सजल हो गईं। वह कुछ सोचकर मुस्करा उठा। उसकी छाती गर्व से इस तरह दोहरी हो गई जैसे उसने संसार का सबसे बड़ा आदमी पैदा कर दिया हो।

5. मोहजनित यातना

आज भीड़ अन्य दिनों से कुछ अधिक थी। मंडप आगन्तकों से खचाखच भरा था। लोगों के चेहर पर थिरकते मुस्कान से वह छोटा-सा भूभाग महक उठा था। लगता था सारा मंडप खुशी से झूम रहा है। सबके चेहर पर स्वाभाविक उल्लास और वर-वधू को देखने की ललक थी। आज मनबोध के तीसर और अन्तिम सन्तान का विवाह है। शादी की अन्तिम रस्म पूरो की जानी है। अभी वर-वधू मंडप में लाये जायेंगे। फेर पड़ेंगे और तब नव-दम्पति इस जीवन संगाम में उतरने के लिए पिता का आशीर्वाद लेंगे।

सब कार्य अपनी गति से हो रहा था। अपने-पराये सबकी आंखों में प्रसन्नता झलक रही थी। चारों ओर से खुशी, बसंत में चम्पा के फूलों की तरह झर रही थी। परतु यह कैसी विसंगति है। मनबोध उस कृपण बाप की तरह उदास बैठा था जिसका कौड़ो-कौड़ी संग्रह किया हुआ धन व्यर्थ ही बहाया जा रहा हो अथवा उस व्यक्ति की तरह जिसका सब कुछ भर बाजार में लूट लिया गया हो।

उसे लगता है आज वह एक बार फिर बुरो तरह ठगा गया है। अपने-पराये सबने उसे ठगा है। उसके तीनों बेट और पत्नो मिलकर हमेशा उसे ठगते रहे हैं। मंडप में उपस्थित सार लोग उसे ठग नजर आते हैं जो नियोजित ढंग से षड्यन्त्र रचकर अब बुढ़ापा में उसका एकमात्र सहारा भी छीन लेना चाहते हैं। उसे लगता है अनचाहे ही उसके हाथ से कोई बहुमूल्य निधि फिसलती जा रही है जैसे किसी शिथिल हाथों पड़कर भरो डोल कुआं में गिर रही हो।

शहनाई का व्यथित स्वर मंडप में थरथराने लगा। मनबोध चौंककर देखा। वर-वधू मंडप में खड़े हैं और अब फेर पड़ने शुरू हो जायेंगे। गणेशु को देख मनबोध के होठों में मुस्कान बिखर गयी। गणेशु बिलकुल उस पर गया है। नाक-नक्श बिलकुल हूबहू उसी जैसा है आर धीर-धीर अतीत में वह ऐसा खोया कि वर-वधू की जगह उसने पारो और खुद को खड़ा पाया।

बीता कितना मधुर था। मनबोध अपने विषय में सोचता है तब पारो को पाकर वह धन्य हो गया था। पारो की कुंदन काया को देख उसका रोम-रोम झंकृत हो उठा था जैसे उसे कोई दुर्लभ अभीष्ट वस्तु अनायास मिल गयी हो—'अब तुझसे कुछ नहीं मांगना भगवान।' पर बाहर से खूबसूरत दीखने वाली नश्वर काया की प्राप्ति ही इस जीवन का लक्ष्य है क्या? निरो शरोरासक्ति के आधार पर खड़ा प्रेम का महल कब तक टिका रहता? भोग्या और भोक्ता के उन्मादक जीवन जीते हुए मानो नित्य अपने मन के कोढ़ को बहाते रहे और परिणाम में आज वे नीबू की तरह निचुड़कर जिन्दगी और मौत के बीच जूझ रहे हैं।

पारो को पाने क लिए कितना तिकड़म किया था उसने। सब नाते-रिश्ते टट गये। मां-बाप, भाई-बहन सबने अनजान की तरह मुंह फेर लिया। समाज से निष्कासित हुआ। थोड़े शब्दों में उसके लिए उसने क्या नहीं किया? जैसे पारो कोई अलभ्य वस्तु हो। बड़े-बुजुर्गों के लाख समझाने पर भी उसे पारो में कोई खोट नजर नहीं आयी थी। पर उसकी आंख तो तब खुलीं जब उसकी लम्बी बीमारो के कारण तीन बच्चों की जननी होकर भी पारो उसके अशक्त घुन लगे शरोर को त्याग एक धनी बलिष्ठ पुरुष को समर्पित हो अपने शरोर की मांग पूरो करने के लिए भाग गई। वह एक आह भर लेता है। कैसा था वह हमेशा साथ बने रहने का दम्भ लिये मोह। कभी क्षय न होने वाले सपने। कभी न बिछुड़ने की छलावा भरो अजीब विश्वास के साथ खाई कसमें। 'उफ' इससे कम में काम नहीं चल सकता था क्या? आज उन वादों और कसमों का क्या हुआ? कैसा छिछला सतही प्रेम था; कैसे ओछे वादे थे?

''बाबू जी! पण्डित को क्या कुछ देना है बता दीजिए न....!'' उसका मझला बेटा उसे विगत से वर्तमान में खींच लाता है। 'अर अब मेरा रह ही क्या गया है, जो चाहो, जितना चाहो, दे दो। अब इस शरोर का क्या कुछ भरोसा है?' पर मन की बात मन में रख लिया, बोला ''जो उचित हो कह दो, अब ऐसे मौके बार-बार थोड़े आते हैं।''

हां, ऐसे मौके बार-बार नहीं आते, फिर भी महेश उसका बड़ा लड़का नहीं आया। मनबोध फिर विगत में खोने लगा—सचमुच अब महेश उसका नहीं रहा। उसे हर तरह से पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाकर भी उसका पूरा-पूरा अहित न कर पाये थे जिसकी कसर उसने मनचाही लड़की से शादी करके पूरो कर ली। अब गलती हो गई थी तो क्या आने पर उसे दरवाजे से दुत्कार देता? कौन बाप नहीं चाहता होगा कि उसकी सन्तान सुखी रहे। पर क्या कहा जाय; लिख दिया—'फुरसत नहीं है'...जनम-जनम के रिश्तों को किसी पतले तन्तु की तरह यों ही झटककर तोड़ दिया जाता है क्या? गणेशु को जब मालूम हुआ कि उसके विवाह पर महेश नहीं आ रहा है तो वह बेहद उदास हो गया था। रात-दिन भैया-भाभी की रट लगाये रहता था! कहता था—''देख लेना बाबू! इस बार भैया-भाभी जरूर आयेंगे।'' गणेशु को उनसे बड़ी-बड़ी आशायें थीं। पर आदमी का सोचा होता है क्या? आदमी सोचता कुछ है होता कुछ और है। वह खुद क्या नहीं सोच रखा था कि महेश आयेगा तो घर की सारो जवाबदारो उस पर थोप देगा।

मनुष्य की संतान की चाहना भी कैसी होती है; उसकी प्राप्ति से मानो उसे कोई विपुल खजाना मिल जाता है। उसकी सुख-सुविधा के लिए जो रात-दिन अपने खून-पसीने औटाया करते हैं क्या उन्हें अपनी संतान से कुछ भी आशा नहीं रखनी चाहिए? आदमी क्या इसीलिए बाल-बच्चों को पाल-पोसकर पढ़ा-लिखाकर बड़ा करता है कि विपत में भी उसकी खोज-खबर न लें। जब वे सुख-सुविधापूर्वक कुशल-मंगल में रहने लगें तो अजनबी की तरह आंख मीच लें! हां, आजकल मां-बाप की आंखें कहां होती हैं? आधुनिकता में पगे बच्चों की-सी समझ उनमें होती है क्या? वे तो अपनी संतान के बस दुश्मन होते हैं। कैसा जमाना आ गया है? आजकल कोई किसी का नहीं। सगा बेटा भी अपना नहीं रह जाता।

शहनाई के चुप होने के साथ ही मनबोध की चेतना लौट आई। फेर समाप्त हो गये थे। वर-वधू को अपनी ओर बढ़ते देखा तो उसके चेहर पर विवशता के शिकन उभर आये जैसे वे दोनों तबाह हो गये हैं और उनकी तबाही का कारण वह स्वयं हो। आज दो जीवन फिर उजड़ गये। उसे लगता है गणेशु कहीं गहर जल में डूब रहा है और वह चाहकर भी उसे उबार नहीं पा रहा है। वह द्रवित हो उठा। उसकी आंखें आर्द्र हो आईं। तुम्हें क्या आशीष दूं बेटा! यह गृहस्थी तो मृगतृष्णा है। यहां तो प्यास ही प्यास है, तृप्ति नहीं। दोनों ने पैर छूए तो मनबोध उनके सिर पर एक विचित्र आत्मतृप्ति के साथ हाथ फेरते हुए मेघ-सा भर मन से हृदय का सारा स्नेह उड़ेल दिया, ''सदा सुखी रहो बेटा, तुम्हारा सुहाग अमर रहे।''

अन्तिम रस्म खत्म होते ही सब लोग एक-एक कर छंट गये। मंडप सूना हो गया और कुछ गिने-चुने अन्तरग व्यक्ति ही शेष रह गये थे। मनबोध उठते हुए गणेशु से पूछ लिया, ''तो फिर कल रुक रहे हो न?''

''नहीं बाबू जी, कल ही चले जायेंगे। अवकाश नहीं है। व्यर्थ में तनख्वाह कट जायेगी। मंझले भैया-भाभी के साथ ही कल निकल जायेंगे।''

''अच्छा'' उसने केवल इतना ही कहा यद्यपि उसकी इच्छा हुई कि कह दे—हां भैया! अब इस घर में रह ही क्या गया है, जैसा विनष्टता को उन्मुख यह मकान वैसा ही मालिक। पता नहीं, कब किसको कौन छोड़ दे। अब किसको परवाह है बाप सुखी रहे या दुखी, मर या जिये। फिर आजकल बहुएं तो सिफ बेट के लिए आती हैं। उनको परिवार के अन्य सदस्यों से क्या सरोकार?

अब वह बिस्तर पर लेट गया था। चारों ओर शांति छा गई थी पर उसका मन अशान्त था। मन में समुद्र की भांति ज्वार-भाट उठ रहे थे। तू भी उसी दलदल में फंस गया र गणेशु, जिस दलदल में फंसकर मैं हाथ मल रहा हूं। तुझे भी वही यातनाएं भोगनी पड़ेंगी जिसे प्राणिमात्र जाने-अनजाने ही विनाशी तत्त्वों में राग करके भोग रहे हैं। वासना के आधार पर बना यह गृहस्थी का बोझ जिसे सारा जग अनेकों दुसह कष्ट सहते हुए ढो रहा है, तुझे भी अज्ञानवश ढोना पड़ेगा। गणेशु के जाने की सुधि आते ही वह मानो आकाश से भूमि पर आ गिरा। उसे एक धक्का-सा लगा और वह

अन्दर ही अन्दर टूटकर रह गया। उसका अन्तिम आसरा भी जिसे वह कसकर मुट्ठी में जकड़ रखा था गीले साबुन की तरह बड़ी आसानी से खिसक जायेगा ऐसी आशा उसे नहीं थी।

सारा जीवन पुत्रों को पाल-पोसकर मानो अपने ही शरीर के दाह हेतु लकड़ी चुनता रहा है। उसे लगता है आज वह खूब छला गया है। सबने उसे अपना-अपना कहकर लूट लिया है। सब कुछ खो जाने का एहसास उसे बेतरह झिंझोड़ देता है, और वह फूट-फूटकर रोने लगता है; जैसे स्नेहीजनों ने मिलकर उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े करके बांट लिया है।

परलोक सुधार के लिए उसने कुछ भी तो नहीं किया। मोह और कामनावश सारा जीवन बच्चे पैदा करने और उन्हें पालने में ही बिता दिया। कौन जाने आगे क्या हो? काश, एक बार फिर से बीते दिन लौट आते। अवसर चूक जाने का मोह बुरी तरह उसके हृदय को कचोट रहा था। मनबोध आहत-सा पड़ा रहा और उसकी आंखें गीली होती रहीं जैसे किसी गरीब के जीवन भर का संचित धन उसी के सामने जलाकर राख का ढेर कर दिया गया हो। पर पछताने मात्र से ही मूर्खतावश खोया वक्त लौट आता है क्या? इसी तरह भूत और भविष्य की चिन्ता में खोया मन-बोध कब सोया होगा कुछ कहा नहीं जा सकता।

6. मोहविद्ध

पुसऊ मेर पास बैठा रो रहा है। बहुत रो रहा है, वह दुखी है, बहुत दुखी है। उसका दुखी होना लाजमी भी है। एक अत्यन्त साधारण आदमी के साथ असाधारण घटना घट गयी है। उसके इकलौता बेटा का देहावसान हो गया है। बेचारा दुखिया! मेर पास अपना दुख बटाने आया है। मैं उसका कन्धा थपथपाकर कहता हूं, ''मत रो भैया! धीरज से काम ल, अपने को सम्हाल। यह संसार ही ऐसा है, यहां कोई किसी का नहीं। एक आता है तो दूसरा जाता है, संयोग-वियोग तो इस संसार का दस्तूर ही है। रास्ते के हमसफर से इतना मोह करना ठीक नहीं है। इसलिए उठ, जाग, चेत और आगे की सुधि ले। भूत की चिन्ता छोड़ और भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त कर।''

परन्तु पुसऊ चुप नहीं हुआ। उसे मेरो दार्शनिकता अच्छी नहीं लगी। वह जानता है यह महज एक औपचारिकता है। मेरो बातें नितान्त छिछली, कोरो और बेअसर रहीं, मानो एक रोगी ने दूसर को निरोग होने का पथ्य सुझाया हो। उसकी सिसकियां बन्द नहीं हुईं। मेर हाथों का स्पर्श पा वह और जोर-जोर से रोने लगा है।

मुझे उसका रोना अच्छा नहीं लगता। छोटो-छोटो बातों के लिए भला में-में क्या रोना। दुनिया में वही अकेला बाप नहीं है जिसका बेटा मरा हो। और भी हैं, बहुत हैं। न जाने आज तक कितनों के कितने बाप-दादे, नाती-पोते पीढ़ी-दर-पीढ़ी मर गये। आज भी मर रहे हैं, कल भी मरंगे। यह कोई बड़ी बात नहीं, नई बात भी नहीं है, फिर यह रोना-गाना किसलिए?

उसके लड़के का मर जाना मेर लिए साधारण बात है। मेर लिए ही क्यों, पुसऊ के अतिरिक्त सबके लिए वह मामूली बात है। सबको अपना दुख बड़ा और दूसरों का छोटा लगता है।

मैं उसे फिर समझाने का प्रयत्न करता हूं, ''मत रो भैया! इस दुनिया में दुख ही दुख है, यहां सभी दुखी हैं। आज तक के इतिहास में एक भी ऐसा मिसाल नहीं है कि किसी ने आजीवन सुख भोगा हो। जीवन में धूप-छांव लगे ही रहते हैं। कभी चिट तो कभी पट, इतने से हार जाओगे तो यह पहाड़-सी जिन्दगी कैसे कटगी? रोने वाला कभी सुखी नहीं होता। फिर रोने वालों का कोई साथ नहीं देता। वह तुम्हारा लड़का नहीं था पुसऊ। तुम्हारा होता तो इस तरह साथ क्यों छोड़कर चल देता? वह छलने आया था भैया! यह नियति बड़ी क्रूर है। तुम्हारा उसका इतने ही दिनों का साथ था।''

वह चुप तो हुआ नहीं उलटा छाती पीट-पीटकर रोता है। ''मैं मर जाऊंगा, मेरा सब कुछ लुट गया। मेर कुल का दीपक बुझ गया। मेरो आंखें चली गयीं, बुढ़ापे का सहारा चला गया। हे भगवान! तू मुझे भी क्यों नहीं उठा लेता? अब इस जग में मेरा है ही कौन?''

मैं मन ही मन सोचता हूं, पागल है! कोई किसी के मरने पर मरता है भला। अर, दो-चार घंट रो लिया बहुत है, बहुत हुआ तो श्मशान तक। लोग अपने सम्बन्धियों के मरने पर मरने लगें तो यह संसार ही खाली हो जाये। आज पुसऊ का रोना देख मुझे लग रहा था सचमुच लोग मरने वालों के लिए नहीं बल्कि अपने लिए रोते हैं। अपनी सुख-सुविधा में कोर-कसर देखकर रोते हैं।

उसके हृदय विदारक रुदन से मरा चित्त फटने लगा है। मन में वितृष्णा हो चली है, पर आदमी के दुख में आदमी ही तो काम आता है, ''इतना अधीर मत हो पुसऊ! तकदीर का लिखा कोई नहीं मिटा सकता। प्रारब्ध तो भोगना ही पड़ेगा। तनिक सोच भैया, भावना में मत बह, विवेक से काम ले। जीव और शरोर के तत्त्ववेत्ताओं की बातें तो सुनी होगी। जीव अमर है, वह तीनों काल में नहीं मरता। जिसके लिए तू इतना दुखी है, वह तो मरा नहीं। इस देह को छोड़ अन्य खानि में चला गया। जिसने तेरो परवाह नहीं की उसके लिए तू इतना चिन्तित क्यों होता है? और यह शरोर जिसे तू अभी-अभी जलाकर आ रहा है वह तो नश्वर है। फिर तू किसके लिए इतना शोकाकुल है? तेरो-मेरो सब की यही गति है भाई! अत: इसकी अहंता-ममता त्याग। इस ध्रुव सत्य को विचार और दुख से निवृत्त होने का उपाय कर, इसी में जीवन की सार्थकता है।''

मरो लाख कोशिशों के बावजूद भी वह चुप नहीं हुआ। रोते-रोते उसकी आंखें सूज गई हैं और गला भर्रा गया है, ''यह सब क्या हो गया? जिन्दगी में यह दुर्दिन भी देखने थे। जिसके लिए मैंने अथक श्रम किया, रात को रात और दिन को दिन न माना, वह इस तरह विलग हो जायेगा, ऐसा कभी सोचा भी न था।''

उस बालक से संबद्ध पिछले जीवन की खट्टी-मीठी स्मृतियां बार-बार उसके अन्तर को मथ देती थीं। उसके दुख का परिमाण किसी तरह कम नहीं होता था। मोह की यह विषम जटिलता उसे विवेक-शून्य बना देती है और वह वहीं-वहीं अपने ही दुख के वृत्त में घूमने लगता। वह अपना दुखड़ा लिए चुपचाप उठा और जाने लगा। उसके गम को हलका न कर सकने का क्षोभ मेर मन में व्याप्त था, मैं भी पीछे हो लिया।

घर में प्रवेश करते ही उसकी पत्नो कदमों की आहट पाकर निकली और उसके पैरों पर आ गिरो। वह रो-रोकर अधमरो-सी हो गई थी और बाल कन्धे पर बिखर गये थे। वह जोर-जोर से रोती हुई पुसऊ का हाथ हिला-हिलाकर पूछने लगी, ''मेरा लाल कहां है; मेरा बेटा कहां है? मुझे मेरा बेटा ला दो। मुझे मेरा लाल चाहिए।'' पुसऊ कुछ नहीं बोलता। वह पत्थर की भांति खामोश खड़ा है। उसकी आंखें अविरल बह रही हैं। आंसू लुढ़ककर गालों में आ जाते हैं और फिर वहां से फिसलकर धरती में समा जाते हैं।

मैं कुछ गज की दूरो पर खड़ा यह करुण दृश्य देख रहा हूं। यहां माया सीमा तक खुशी में झूम रहो है और मोह अपनी पराकाष्ठा पर है। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो खड़ा हूं। मेरा विवेक शून्य-सा होने लगा है। 'मेरा लाल कहां है?' दुख में डूबा यह वाक्य बार-बार कानों में टकरा रहा है। मुझे लगता है यहां मेरो कोई नहीं सुनेगा। मैं अपने प्रयत्न की असफलता देख विवश होकर पीछे की ओर मुड़ जाता हूं।

7. झुठलाया हुआ सच

जब मैं डाक्टर पीटर के दवाखाना में गया तो वहां रामदास की उपस्थिति से मुझे काफी प्रसन्नता हुई। रामदास माध्यमिक शिक्षा तक मेरा सहपाठी रहा और अब वर्षों बाद मिला था। मैंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अभिवादन के लिए हाथ बढ़ा दिया, ''हलो! रामदास! यहां कैसे?'' उसने हाथ मिलाते हुए कहा, ''रामदास नहीं, मिस्टर पीटर कहिए, और यह मेरा ही दवाखाना है।''

''अहो!'' मैं किंचित अचकचाया। कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है! फिर भी साहस करके बोला, ''कैसे?''

''बहुत स्पष्ट है। मैंने इंसाइयत स्वीकार कर ली है और मैं समझता हूं कि अब मैं बहुत सुखी हूं।''

''तब और अब में क्या अन्तर आ गया है?''

रामदास ने कुर्सी आगे सरकाकर बैठने का संकेत करते हुए कहा, ''क्या यह नहीं हो सकता कि आप इस बार में और न जानें?''

''नहीं मैं जानना चाहता हूं और आग्रह भी करूंगा।'' मैंने कहा।

उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, ''तब तो बताना ही पड़ेगा। अच्छा आप क्या लेंगे, ठंडा या गरम?''

''कुछ भी चलेगा।'' मैंने यंत्रवत कह दिया।

''मैंने इसलिए कहा था कि चाय में आपका साथ न दे पाऊंगा।''

''अर! मैं तो भूल ही गया था। मुझसे तो यह त्याग भी नहीं हो सकता।''

''फिर भी आप लोग ऊंचे हैं।'' रामदास हंसा और अन्य उपस्थित मरोजों को देखने लगा।

मेर भीतर जैसे कहीं कुछ चुभ गया। मानो रामदास कह रहा हो, यही तुम्हार उस धर्म का विधान है जिसकी तुम हिमायत कर रहे हो। जहां कुछ लोग त्याज्य को ग्रहण करते हुए भी जातीयता के आधार पर ऊंचे बने हुए हैं और कुछ लोग सब तरह से उदार और त्यागी होते हुए भी अस्पृश्य और नीच हैं।

वर्षों पीछे का रामदास मेरो स्मृति में उभर आया जो अब डाक्टर पीटर बना हुआ है। उसमें जितना कुछ भी मानवीय गुण था वह किसी भी मां-बाप को गर्व करने के लिए पर्याप्त था। इस विनम्र त्यागी व्यक्ति में दुर्व्यसन तो मैंने एक भी न देखी थी। परन्तु अन्य विद्यार्थियों के ताने उसे बेतरह झिंझोड़ देते थे। मैंने कई बार अपने सहपाठियों को कहते सुना था, ''साला चमरा बड़ा सीधा बनता है।'' यह सुनते ही वह बिगड़े हुए घोड़े की तरह बिदक जाता और हाथापाई पर भी उतर आता था। मैं तब भी देखता था और आज भी महसूस करता हूं हमार समाज में इनका स्थान आज भी वही है जो वर्षों पहले था।

अब तक नौकर दो गिलास शरबत लाकर रख चुका था और रामदास मरोजों को निबटाकर आश्वस्त हो गया था। उसने गिलास आगे सरकाते हुए कहा, ''लीजिए, अच्छा आपने यह तो बताया ही नहीं कि आपका आना कैसे हुआ?''

''आपका मतलब इस शहर से है कि दवाखाना से?''

''दोनों ही से?'' रामदास मुस्करा उठा।

''मैं सिंचाई विभाग में अधिदर्शक हूं और स्थानान्तरण पर आया हूं। आपके पास आने का सबब तो स्पष्ट ही है।''

''क्या तकलीफ है आपको?''

''सिर में दर्द रहता है।''

''ये गोलियां ले जाइये। सुबह-शाम एक-एक गोली ठण्डा पानी के साथ खाइयेगा।'' उसने

कागज में कुछ गोलियां लपेटकर देते हुए कहा और कुर्सी पर बैठ गया। ''अब आपको बताऊंगा कि मेर धर्म-परिवर्तन से क्या अन्तर आ गया है।''

मैंने शरबत पीते हुए मूक-भाव से उसकी ओर ताका। उसने एक घूंट शरबत पीकर गिलास मेज पर रखते हुए कहा 'मेर लिए कुछ भी नहीं। अब भी मेरा धर्म वही है। मानव मात्र का धर्म। परन्तु समाज की दृष्टि में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। पहले मैं हिन्दू होकर भी हिन्दुओं के समाज में नीच, अछूत और चमार था और अब एक प्रतिष्ठित जाति का संभ्रान्त सदस्य हूं। अब मुझे कोई हेय की दृष्टि से नहीं देखता। कोई अछूत नहीं समझता। जो कभी मेरो छाया से भी कतराते थे उन्हें अब मुझसे हाथ मिलाते झिझक नहीं होती, कैसा आडम्बर है?'' उसने गिलास में बची शरबत मुंह से लगा लिया और खाली गिलास 'ठक' से मेज पर रख दिया। इस वक्त उसके चेहर पर घृणा, उपेक्षा और न जाने किन-किन भावों की होली जल रही थी। उसका चेहरा विकृत हो गया था, जैसे जीवनपर्यन्त सही गई कटता एक साथ चित्त में भर गई हो।

उसका एक-एक शब्द मेर मन पर भारो हथौड़े की तरह चोट कर रहा था। वह तीव्र दृष्टि से मेरो ओर देखकर कहने लगा, ''यह कैसे सम्भव है श्रीमान! कि एक भाई अपने ही घर में अन्य भाइयों से तिरस्कृत होते हुए भी वहां का सदस्य बना रह? और उस घर में कब तक सुख-शान्ति कायम रह सकती है? हिन्दू अपने ही बुने हुए जाल में उलझ गये हैं। अपने भाइयों को घृणा और नफरत की दृष्टि से देखते हैं और जब वह व्यक्ति धर्म-परिवर्तन कर लेता है तो ऊंचा बन जाता है चाहे कर्म बुर ही क्यों न हो।

''हिन्दू अपने ही हाथों में बेड़ियां डाल लिए हैं, वे इस आपसी वैमनस्य और छुआछूत की भावनाओं के पीछे पड़कर पतित होते जा रहे हैं। हमार देश की परतंत्रता का कारण इनकी यही अदूरदर्शिता थी जिसका इतिहास साक्षी है। प्राचीन काल में भी हिन्दुओं के इस अज्ञान का लाभ सदा विजातीय और विधर्मी लोगों ने उठाया है। सच तो यह है, कि मैं नहीं चाहता था कि इस जातीय भेद के कारण जिस हीनता का शिकार मैं हुआ हूं उसकी काली छाया भी मेर बच्चों पर पड़े। कल मेर बच्चे शान से अपने को ईसाई समझेंगे और तुम्हारो इस सतही धर्मान्धता पर हंसेंगे।''

रामदास लगातार बोलते ही जा रहा था, ''मुझे तो आश्चर्य है आज भी उपेक्षित, नीच समझे जाने वाले लोग हिन्दू कैसे बने हुए हैं? तुम्हारो इसी व्यवस्था के कारण न जाने कितन हिन्दू अपना धर्म-परिवर्तन कर लिये और न जाने कितने करंगे? ऐसा क्यों? कितने लोगों को आपने विजातीय से हिन्दू होते सुना?''

''बस करो रामदास! मैं आगे नहीं सुन सकता।'' मैं लगभग उत्तेजित हो गया था।

''क्या मैंने झूठ कहा? क्या यह सच नहीं कि आदमी सिर्फ आदमी है? न वह हिन्दू है, न ईसाई, न मुसलमान। फिर इस सत्य को क्यों झुठला दिया गया है?''

''नहीं भाई! तुम सच कह रहे हो, यही तो दुख की बात है। सचमुच हम अपने ही जाल में उलझ गये हैं। न जाने कब हम आपस में प्रेम करना सीखेंगे?''

''अच्छा पीटर तो मैं चलूं।'' बचपन के सहपाठी रामदास को 'पीटर' कहते मुझे हंसी आ गयी। रामदास भी हंस पड़ा और हंसते हुए उसने पूछ लिया, ''क्या मैं आशा करूं कि आप फिर पधारंगे?''

''अवश्य'' मैंने उठते हुए कहा, ''मेर लिए वे सभी हिन्दू हैं जो अन्य जातियों में रहते हुए भी हिन्दू जैसा विचार और व्यवहार रखते हैं।''

''पर आप जैसे कितने लोग हैं?''

''मैंने अपने संबंध में कहा है।''

अपने को हिन्दू कहने वाला हर एक व्यक्ति जानता है कि रामदास की बातों में कितनी सत्यता है फिर भी हम लीक छोड़कर चलना नहीं चाहते। मन में रामदास की बातें कांट की तरह खटक रही हैं। मं सोचत हुए दहलीज पारकर बाहर आ गया हूं—सचमुच कैसी-कैसी मान्यताएं बना रखी हैं हमार समाज ने।

8. मृग मरोचिका

शीला इन दिनों कुछ अधिक उदास रहने लगी है। मन में सदा उथल-पुथल मचा रहता है और चेहर पर हवाइयां उड़ती रहती हैं। वह बेहद निराश, थकी हुई मालूम होती है, जैसे कोई यात्री लम्बा सफर तय करके चिर विश्रांति चाहता हो। मुखमण्डल कान्तिहीन हो गया है और सुडौल मांसल देह में मानो घुन लग गया है।

हालत दिनों-दिन बिगड़ती जाती है। मन का सम्बल टट चुका है। जीने की चाह ही खत्म हो गई है। जैसे वह खुद को मिटाने पर तुली हुई है, धीर-धीर मोमबत्ती की तरह घुलती जा रही है। सभी लोग कहते हैं, 'शीला! अपने आपको सम्हालो। क्यों इतनी लापरवाह हो गई हो? जीवन इस तरह तिल-तिल कर मिटाने के लिए नहीं है।' वैसे तीन ही प्राणी हैं इस घर में। राम, जो इस घर का पुराना वृद्ध नौकर है, उसे भी सम्मिलित कर लें तो कुल चार प्राणी इस घर की नीरवता को भंग किया करते हैं।

वैसे भी इस घर में प्रायः खामोशी छाई रहती है। मकान शहर के शोरगुल से दूर एकान्त में बना हुआ है। चारों ओर सुन्दर बाग-बगीचे तथा फूलों की क्यारियां हैं। पूर्व में नदी बहती है और पश्चिम में मरघट है, जहां प्रायः चिता जला करती ह। शीला नित्य शाम को झरोखे से पश्चिम में जलती-बुझती चिताओं को देखती और तरह-तरह की कल्पनाओं में खाई रहती है। कई बार उसे लगता है जैसे उस चिता में उसका ही शरोर जल रहा है और विवश-सी छटपटाती हुई चिल्ला रही है।

सुरश, शीला का पति एक व्यापारो है। वह कई-कई दिनों तक प्रवासी बना रहता है। उसे घर में हो रहे उतार-चढ़ाव की फिक्र नहीं रहती। वह दौलत के लिए चोर के पीछे पुलिस को तरह भागता रहता है। इसलिए भौतिक सम्पत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है और शीला अपने ही परिवेश में घुटती रहती है।

रामू घर के वयोवृद्ध सदस्य की तरह सम्मान और भोजन-वस्त्र पाता है और उसी तरह जी-तोड़कर घर का छोटा-बड़ा सभी काम निपटाता है। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं। सब अपने-अपने दायर में खामोश चले जाते हैं। तोन वर्ष की बालिका भी शायद अपनी परिस्थिति से समझौता कर चुकी है। जब कभी सुरश आता है तो पूछ लेती है कि कहां जाते हो? उसे और मां को क्यों नहीं ले जाते? फिर जैसे उसकी शिकायत भी समाप्त हो गई है, वह सहज रूप से पिताजी को आते-जाते देखा करती है।

सिर्फ शीला ही है जो अपने को इस परिस्थिति में समाहित नहीं कर पा रही है। उसके अन्तर्मन में विद्रोह मचा हुआ है। परन्तु वह मूक भाव से अपने भीतर ज्वालामुखी का पहाड़ छिपाये जी रही है। उसे लगता है—सुरश, मरुस्थल में भागते हुए हिरण की तरह बेतहासा दौड़ रहा है और वह किसी खूबसूरत पिंजड़े में निर्बल पक्षी की तरह कैद हो गई है। न वहां तृप्ति है, न यहां शांति। दोनों जैसे विपरोत दिशाओं में चलते जा रहे हैं और प्रतिपल एक दूसर से दूर होते जाते ह।

जब रामू से यह घुटन देखा नहीं जाता तो वह पूछ लेता, ''शीला, बेटो! इतनी उदास क्यों रहती हो; क्यों नहीं अपने को सम्हालती?''

शीला मुस्कराने की कोशिश करती है पर उसके होठों में हृदय की पीड़ा बिखरकर रह जाती है, ''कहां, काका! मैं तो बिलकुल ठीक हूं।''

''हां बेटो, तुम बिलकुल ठीक हो।''....वृद्ध रामू की आवाज थरथराने लगती है। आंखों में आंसू भर आते हैं और वह कमरा से बाहर आ जाता है। शीला फफककर रो पड़ती है। रामू जानता है, शीला स्वयं भी अपने उदासी के कारण से अनभिज्ञ नहीं है पर दोनों ही न जानने का बहाना करते हैं। तब शीला खुद ही अपने से पूछती है, वह इतनी उदास क्यों रहती है? किस चीज की कमी है उसे। धन है, मर्यादा है, सुन्दर पति और सुन्दर कन्या है। भौतिक सुख के अनेक उपादान उपलब्ध हैं। क्या नहीं है उसके पास? सब कुछ तो है। फिर भी शांति नहीं। प्रतिपल अतृप्ति का अहसास

मन को सालता रहता है।

उसे यह धन-दौलत जंजीर की भांति लगता है, जिसमें उसका पति सुरश जकड़ गया है और वह इस एकान्त कमरा में घुटने को विवश हो गई है।

एक दिन उसकी तबियत कुछ अधिक खराब हो गई। प्रात: शीला देर तक न उठी तो रामू दरवाजा ठेलकर भीतर चला गया, ''अब तक नहीं उठी बेटो?'' ''आज तो खूब सोने का मन कर रहा है काका!'' शीला अलसायी आवाज में बोली।

रामू गौर से शीला को देखा, उसका मुख पीत वर्ण हो रहा था। वह खिड़की की ओर बढ़ते हुए कहा, ''यह खिड़की खोल दूं बेटो?''

''हां काका, वहां कुर्सी रख दो, मैं थोड़ी देर बैठना चाहतो हूं।'' खिड़की खोलते ही ताजा ठण्डी हवा कमरा में भर गई। पतझड़ अन्तिम चरण पर थी। प्रकृति नये परिधान में सज रही थी। सुबह हो गई थी और अब चिड़ियों का चहचहाना बन्द हो गया था। शीला नित्य की तरह प्रकृति का सौन्दर्य देखने लगी। आम के सघन वृक्ष बौरों से लद गये हैं। सारो अमराई महक से भर गई है। शीला सोचती है, ''मन में उफान की तरह पागल वृक्ष दो दिन की खुशी में कैसे उन्मत्त हो रहे हैं। जैसे सदा इसी तरह भार से लदे रहेंगे। यह भूल जाते हैं कि चार दिन के बाद फिर पहले की तरह रोते हो जायेंगे और खड़े-खड़े अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहायेंगे।''

शीला वर्षों से देख रही है। इन्हीं वृक्षों के मध्य में बेलाग द्रष्टा की भांति खड़ा ठूंठ ज्यों का त्यों बना हुआ है। जैसे कोई तपस्वी दृढ़ होकर संसारियों के मन में दुख-सुख के घटते-बढ़ते प्रभाव को निर्लि# होकर देखा करता है। वर्षा, शीत, धूप और अन्य व्याधियां इसका कुछ नहीं बिगाड सकतीं, वह सदा एकरस शांत बना रहता है।

''क्या सोच रही हो बेटो?'' रामू की आवाज से उसके विचारों की शृंखला टट गयी।

''उस सूखी पड़ी हुई नदी को देख रही थी, काका! जो सावन-भादों में कैसी इठलाती रहती है; और आज किसी त्यक्ता की तरह उदास लेटो हुई है। सोचती हूं मेरा भाग्य तो इससे भी बदतर है।''

''ऐसा क्यों कहती हो, बेटो। धैर्य रखो। सुख-दुख तो जीवन में लगे ही रहते हैं। सब दिन समान नहीं होते। सोच लो, तुम्हार सुख के दिन भी नहीं रह। फिर सबके भाग्य में सब सुख थोड़े होते हैं। अपनी स्थिति से समझौता कर लो, बेटो। इस संसार का हरक पदार्थ मायावी है। यह सम्पूर्ण संसार ही मृगमरोचिका है। इससे कुछ आशा करना व्यर्थ है।'' रामू की आवाज क्षीण हो गई।

''सच कहते हो काका! सबके भाग्य में सब सुख नहीं होता। मैं भी वैसा ही हतभाग्य हूं।'' दुख से शीला की आवाज बोझिल हो गई।

तभी सुरश की आवाज सुनकर रामू दूसर कमर में चला गया। उसे देखते ही सुरश बोला, ''आज चाय नहीं पिलाओगे काका?''

''कहीं जा रहे हो बेटा?''

''हां काका! बहुत जरूरो काम है। संभव है आज न आ सकूं। शीला की तबियत कैसी है?''

रामू बुझे हुए स्वर में जवाब दिया, ''कई दिनों में तो कल आये थे। आज फिर जा रहे हो। कुछ घर का भी तो ख्याल रखा करो।''

''तुम्हार होते मुझे इसकी चिन्ता नहीं है काका।'' सुरश चाय पीते हुए बोला, ''मैं डॉक्टर से कहता जाऊंगा कि वे शीला को देख जायें। दवाई बाजार से ले आना।''

''अर दवाई से क्या होता है? दवाई से ठीक हो जाती तो आजतक ठीक न हो गई होती?'' रामू ने रुखाई से जवाब दिया।

''क्या कहते हो काका।'' सुरश जाते-जाते ठिठक गया।

''देखो बैटा, शीला बेटो की हालत बहुत खराब है और तुम्हें उसके पास जाने को समय नहीं। घर

की लक्ष्मी की इतनी उपेक्षा ठीक नहीं है। सुखी जीवन के लिए बाह्य सुख-सुविधाओं के ये भौतिक साधन ही पर्याप्त नहीं हैं। स्नेह और सद्‌भावना भी आवश्यक हैं। जिनसे तुम उसे वंचित कर दिये हो। ऐसा न हो कि....।'' रामू आगे न बोल सका। उसका गला भर आया था। सुरश को जैसे सांप सूंघ गया। अनिष्ट की आशंका ने उसे झकझोर कर रख दिया। उसकी आवाज डूबने लगी, ''तुम तो मेर पिता तुल्य थे, काका! पहले आगाह क्यों नहीं किया; अब मैं क्या करूं?'' वह शीघ्रता से शीला के कमर की ओर चल दिया।

शीला अब भी अनावृत्त-सी पड़ी सूखी नदी को देख रही थी। कमर में धूप के छोट-बड़े टकड़े शीला की तरह अलसाये से उदास पड़े थे। उसे देखते ही सुरश को लगा जैसे उसकी चेतना अकड़-अकड़ कर टटती जा रही है। उसकी आंखों में उस उपेक्षिता के प्रति श्रद्धा और पश्चाताप के आंसू उमड़ आये। वह खड़े-खड़े सोच रहा था—यह निरपराधिन क्योंकर आज तक इतनी यंत्रणा सहती रही है।

9. सपूत या कपूत

जब डाकिये ने दरवाजा खटखटाया तो दोपहर का वक्त हो चुका था। निरजन दास भोजन करके विश्राम कर रहे थे और थकावट से उनकी आंख झपक रही थीं। दरवाजा थपथपाने की आवाज से उनकी तन्द्रा भंग हो गई। 'यह खेती-बाड़ी का काम भी बड़ा चिलचिल का काम है। समय पर हो जाये ता ठीक, नहीं तो लाख सिर मारो चूक गया तो बस सम्हलता ही नहीं।' वह मन ही मन क्षण भर में सोच लिया। दरवाजा खुला और बन्द हो गया। ''अर, कौन था भाई?'' उसने इत्मीनान से करवट बदल ली। ''डाकिया था बाबूजी'' रामू कमर में प्रवेश करते हुए कहा—''यह चिट्ठी दे गया है।''

''किसकी चिट्ठी है?''

''भूषण भैया की लगती है।''

''सब कुशल मंगल तो है न?''

''हां बाबूजी....'' उसने चिट्ठी पढ़ते हुए कहा, ''भैया ने लिखा है कि सब ठीक-ठाक है और अबकी भैया पचास रुपये ही भेज रहे हैं। हाथ कुछ तंग है, इसलिए अधिक नहीं भेज सके।''

निरजन दास खुशी से अघा गये। वे गदगद होकर बोले, ''भूषण बड़ा ही सपूत निकला। तुम देख रहे हो वह कैसे कमा रहा है? खुद का खर्च चलाता है और हर महीना बिना नागा किये कुछ न कुछ भेज ही देता है। अब ऐसे बेट को पाकर कौन बाप अपने को धन्य नहीं समझेगा! बहू को ले गया तो गहने-जेवर से लाद दिया।

''और एक तू है, लगी लगाई अच्छी खासी नौकरो छोड़ दी। क्या करगा तू यहां? खेती करके कौन अमीर हो गया है? यहां दिन भर धूप और पानी में खटना पड़ता है, तब कहीं निर्वाह भर को अन्न होता है। तुझे कैसे समझाऊं। आज जमाना सीधा का नहीं है। मैं मर गया तो भूखों मरने लगेगा। तुझे दो रोटो को भी कोई नहीं पूछेगा। भूषण की तरह कहीं पटवारो, मुंशी होते तो अपना पेट चलाते और दो पैसा पैदा भी करते।''

''बाबू जी.....।'' रामू गम्भीर होकर बोला।

''हां....।''

''आप तो कहते हैं कि ऊपर वाला सबको देता है?''

''सो तो है।''

''फिर मुझे क्यों नहीं देगा? आप व्यर्थ चिंता करते हैं?''

''ऐसा तो सभी कहते हैं, पर आज तक किसको दिया है?''

''रात-दिन उसी की पूजा करते हैं फिर भी उस पर भरोसा नहीं है बाबू जी?''

निरजन दास तमक गये, ''तू हमेशा बकबक करगा। भगवान किसी को कमा के नहीं देता। खुद कमाना पड़ता है तब पेट भरता है। अब जा बैलों को दाना-पानी दे दे और कुछ देर आराम कर ले। तेर भाग्य में दुख भोगना ही बदा है तो कौन टाल सकता है। हां, थोड़ा जल्दी चले चलना। जितनी जल्दी खेत में बीज डाल दें उतना ही ठीक है अन्यथा इस बारिस का क्या भरोसा, शुरू होती है तो रुकने का नाम ही नहीं लेती।''

''जाने आपका ऊपर वाला है भो या नहीं? मुझे तो कपोल कल्पित ही लगता है।'' वह उठकर बाहर आ गया। निरजन दास को अपने इस नालायक लड़के पर बड़ा क्रोध आया, पर चुपचाप लेट रहे।

निरजन दास वैदिक धर्म के प्रकाण्ड पंडित थे। यजमानों की कृपा से थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी हो गयी थी, तब से वे पुरोहित का काम लगभग छोड़ दिये थे और सदैव अपने पुत्रों को उपदेश दिया करते थे। भूषण बिलकुल पिता के विचारों के अनुरूप निकला, परन्तु रामू पिता का उपदेश सुनता तो था पर सब बातें उसके गले के नीचे नहीं उतरतो थीं। वह बड़ा पारखी और तार्किक बुद्धि

रखता था। वह अपने परिवेश में बिखर प्राणी-पदार्थों का निरन्तर चिन्तन करता रहता था। विविध तूल देकर वणिंत अस्वाभाविक घटनाओं को उसकी बुद्धि कदापि स्वीकार नहीं करती और वह घटनाओं के मूल कारणों की खोज में सतत लगा रहता था।

वह अपने पिता के उपदेश को युक्तिसंगत न देख प्राय: कह देता था—''नाना मत-मतान्तरों द्वारा प्रतिपादित यह ब्रह्म मात्र कल्पना लगता है जिसे लोग गढ़-गढ़कर अनेकानक युक्तियों से कहते और सुनते हैं इसे ही लोग सत्य और यथार्थ कहते हैं। परन्तु सब मतों में आपस में विरोध और संकीर्ण भावना इतनी प्रबल है कि वे एक दूसर की अच्छाई को भी सहन नहीं कर सकते।'' निरजन दास इसे विकृत मस्तिष्क की उपज समझते थे और रामू पर अनावश्यक रूप से क्रोधित हो जाते थे।

रामू बैलों की रस्सी खोलते हुए सोचने लगा—बाबू जी भी अजीब प्राणी हैं। सदा कोसते ही रहते हैं। 'मैं', 'मेरा' का मोह भी बड़ा विचित्र है। यह ममता इस बुढ़ापे में भी इन्हें चैन से नहीं रहने देती। देह छूटने पर एक भी काम न आयेगा, पर मोह इतना है मानो सब कुछ गठरो बांध अपने साथ ले जायेंगे। मुंह खोलते ही झिड़क देते हैं, ''कल का छोकरा हमें सिखाता है। बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। तुम क्या जानो कि दुनियादारो क्या होती है।''

वह नांद में दाना-भूसा डुबो देता है। 'भैया के काम में भी कुछ दाल में काला नजर आता है। अन्यथा इतने रुपये कैसे भेज पाते! अबकी आये तो साफ-साफ पूछूंगा।' उसने बैलों को लाकर दोनों तरफ के खूंटों से बांध दिया। बैलों ने सपाट से दो मुंह मारा और हुंकार भरो तो वह समझ गया कि नमक डालना भूल गया है। फिर उसने नमक डालकर अच्छी तरह खदबदा दिया और कमर में आकर लेट गया।

इधर निरजन दास आराम से लेट न सके। वे रामू के प्रति और चिन्तित हो उठे। इस बुढ़ापे में भी वे सीधा-सादा रामू को वाचाल बनाने की युक्ति सोचा करते थे। बहुत सोचने पर भी वह यह नहीं समझ पाते थे कि एक ही परिस्थितियों में पलने वाले दो प्राणियों में भिन्नता क्यों आ जाती है। हम इतना अवश्य जानते हैं कि उसने अपने दोनों जड़वां बेट रामू और भूषण को एक ही सांचे में ढालने की पुरजार कोशिश की थी। एक-सी सुविधा और तालीम दी थी। पर उनमें कितना अन्तर था। वे बड़ी सरलता से अनुभव करते थे।

हर मां-बाप की तरह वे भी रामू की शादी करके उसे सुखी देखना चाहते थ। हमारो समझ में यह बात आज तक नहीं आई कि मां-बाप अपने ही तरह यह जानते हुए भी कि गृहस्थी में केवल दुख ही दुख है, बच्चों को उसी नरक में ढकेलने के लिए उतारू क्यों रहते हैं? क्यों चाहते हैं कि जो यातनाएं वे भोग रहे हैं, उन्हें उनके बच्चे भी भोगें? भूषण उनके विचारों के अनुकूल था इसीलिए वह सपूत था, कुल का दीपक था, और रामू ठीक इसके विपरोत कपूत और कुलबोरू।

खेती-बाड़ी का काम चलता रहा। रोज आकाश में काले कजरार बादल छाये रहते और बिना वर्षा किये एक छोर से दूसर छोर को निकल जाते। तब रामू ऊपर की ओर देखकर घण्टों सोचा करता—यह बादल बरसते क्यों नहीं? क्यों निरकुश उड़ा करते हैं? उसका वश चलता तो वह इन्हें यहीं रुककर बरसने के लिए विवश कर देता। कभी अनावृष्टि न होने देता। इस संसार की एक तिल भूमि भी अतृप्त न रहने पाती। काश! उसका सामर्थ्य होता, वह इस संसार को खुशियों से भर देता। लगता है लोगों की कल्पना के अनुरूप इस विश्व का कोई नियन्ता नहीं। होता तो यह दुर्भिक्ष क्यों होता, सूखा क्यों पड़ता? नाना भीषण दुखकारो प्राकृतिक, अप्राकृतिक घटनायें क्यों घटतीं? इस संसार में भयंकर असमानता क्यों है? और फिर उसका ध्यान हल में जुते हुए बैलों की ओर चला जाता। ये बेचार बैल क्यों हुए? मात्र मेहनत करने और डण्डा खाने के लिए? कैसी विवशता और पराधीनता है? जाने किन जन्मों के बुर कर्मों का फल भोग रहे हैं! उसका वश चले तो वह इन्हें भी आदमी बना दे। फिर उसे स्मरण आता है आदमी भी तो यहां सुखी नहीं है। चारों ओर तृष्णा व्याप्त है। सबसे सबल मानव ने सब कुछ जानते हुए भी कैसी पशुवत दासता स्वीकार कर ली है!

और एक दिन छुट्टी लेकर भूषण भी घर आ गया। चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। दोनों भाई उमंग में भर खेत देखने निकल पड़े। धान के नन्हें पौधों को हवा जैसे झूला झुला रही थी। सारा खेत खुशी से झ्मता प्रतीत होता था। भूषण खुशी से झूम उठा, ''तुमने बड़ा श्रम किया है रामू।''

''नहीं भैया! बाबू जी का पसीना है।''

''टपरो का धान कुछ कमजोर हो गया है।''

''हां भैया! खाद की कुछ कमी हो गई, मेहनत तो खूब किया था।''

''तूने मुझसे क्यों नहीं कहा?''

''मुझे पता है भैया! आपको जितने पैसे मिलते हैं उससे तो गुजारा होना भी मुश्किल है फिर भी जाने कैसे आप रुपये भेजते ही रहते हैं? इस पर भी आपसे रुपये की मांग करता तो मेरो धृष्टता ही होती। अच्छा, आगे चलिए।''

''तू हमेशा बुद्धू ही रहेगा र! बाब् जी ठीक कहते हैं।''

''क्यों भैया?'' बाबू जी का पक्ष लेते देख रामू हंस पड़ा।

''समय के साथ चलना सीख। आज ईमानदारो का जमाना नहीं। वस्तुओं के मूल्य की तरह समाज की मान्यताएं भी बदलती रहती हैं। और जो इन नई मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता उसे पिछड़ा, दकियानूस और न जाने क्या-क्या कहा जाता है। आज सत्यवादी को काई नहीं पूछता बल्कि उसे शक की नजर से देखा जाता है। मैं जानता हूं, इसीलिए तूने नौकरो छोड़ दी थी। सरकारो, गैर सरकारो सभी दफ्तरों में अधिकतर कर्मचारो तो अव्वल नंबर के गद्दार और मक्कार हैं, फिर अपने समुदाय में किसी विजातीय को भला कैसे रख सकते हैं? फिर भी मैं समझता हूं यह तूने ठीक नहीं किया। तुम्हें वहां सजातीय बनकर रहना था। मेर भाई! जो जहां से मिलता है चुपचाप ले लेना चाहिए। आज यही प्रगति का मार्ग है। फिर आज कौन नहीं लेता है? भगवान को भी चढ़ावा देना पड़ता है। बिना उसके पेट नहीं भरता है। तू नहीं देखता है! बाबू जी मुझे कितना चाहते हैं; और तुमसे कितना नफरत करते हैं? उन्हें पैसा चाहिए। चाहे कहीं से आये। कमाऊ बेट को सभी चाहते हैं। फिर सभी संग्रह कर रहे हैं तो हम ही पीछ क्यों रहें। गरोबी अभिशाप है। देखते हो गरोबों को कौन पूछता है? घर में कितना कुछ है वह तुमसे छिपा नहीं है। यह दो परिवार के लिए कितना अपर्याप्त है। इसलिए भी कमाना जरूरो है। इसीलिए कहता हूं समय को पहचानो, नहीं तो पीछे रह जाओगे।''

''यह भीरुता है भैया!''

''चाहे जो समझो पर है तो सच ही।''

''नहीं यह आत्म प्रवंचना है। साधन को ही साध्य मान लेना भयंकर भूल है। आप सत्य की कट्ता से बचना चाहते हैं।''

''यहां मैं सहमत नहीं हूं। हमार समाज में धन ही श्रेष्ठता का मापदण्ड है। लोग इसी तराजू में सबका तौलते हैं।''

''और आप श्रेष्ठ बनना चाहते हैं?''

''अकिंचन बने रहना भी नहीं चाहता।''

दोनों खेत के मेड़ पर चल रहे थे। खेत में पानी भरा था। कदमों की आहट पाते ही कीड़े-मकोड़े तथा छोट-बड़े मेंढक छप से पानी में कूद जाते थे। रामू कुछ देर की चुप्पी के पश्चात बोला ''एक बात कहूं भैया!''

''क्या?''

''यदि आपको बाबूजी की पूरो सम्पत्ति मिल जाय तो आप कैसा महसूस करंगे?

''कहना क्या चाहते हो?''

''यही कि अपने को अकिंचन तो नहीं महसूस करंगे?''

''शायद नहीं! पर यह कैसे हो सकता है? उस पर तो हम दोनों का समान अधिकार है।''

इस पर रामू ने प्रसंग बदल दिया ''जमीन श्रम मांगती है भैया! वह देखो हरिया का खेत कैसा हरा-भरा है। वह मशीन की तरह जी-तोड़ मेहनत करता है।'' वह खेत में उतरते हुए बोला, ''आगे चलिए बाहरा का धान देखते हुए चलेंगे।''

और दूसर दिन रामू अचानक कहीं गायब हो गया। भूषण को आशंकाओं ने आ घेरा। कहीं भाई ने सदा के लिए तो घर नहीं त्याग दिया! कल की बातों ने मन को घेर लिया, ''यदि आपको बाबूजी की सारो सम्पत्ति मिल जाय ता....यही कि आप अपने को अकिंचन तो नहीं महसूस करंगे.....।' उसे लगा जैसे रामू ने करारा चपत जड़ दिया हो। उससे न रहा गया तो बाबूजी से जाकर पूछा। उन्हें भी बताकर नहीं गया था। संध्या होते-होते उसकी आशंकाओं की पुष्टि हो गई। रामू नहीं लौटा। भूषण भीतर ही भीतर जैसे टटकर बिखर गया ''तुमने यह क्या किया रामू?'' निरजन दास को पता चला तो उन्होंने विवश-सा निःश्वास खींचकर कहा ''इसके लक्षण ऐसे ही थे। कपूत ने कुल का नाम डुबो दिया।''

10. गहन अंधकार और मामबत्ती

जब आदित्य का पत्र मिला मैं दफ्तर में बैठा था और संयोग से उस भवन के नक्शा को अंतिम रूप दे रहा था, जिसके साथ आदित्य का दुर्भाग्य जुड़ा है। नक्शा लगभग पूर्ण हो चुका था। सिर्फ मैदानी धरातल से भवन के प्लिंथ लेबल को मिलाने वाली दो खड़ी रखायें नहीं खींची गई थी, जिसके कारण भवन अधर में लटका हुआ दिखाई दे रहा था। फिर उस दिन कोई काम न हो सका था। दफ्तर से उठकर सीधा घर आ गया। आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे ही तन्द्रा-सी छा गई थी। पत्नो कह रही थी, ''दो हाथ ऊपर कुर्सी पर लटके हुए थे और मैं बदहवास-सा धीमे-धीमे बुदबुदा रहा था, नहीं, नहीं....ऐसा नहीं हो सकता....।''

आदित्य मेरा बाल सखा था इसलिए विचारों की असमानता के बावजूद भी एक-दूसर के प्रति आत्मीयता थी। बचपन में एक ही डाल के दो पत्तों की तरह हिलते थे और एक ही जुआ में जुते दो बलों की तरह फिरा करते थे। वह अपनी बात का पक्का और स्वभाव का जिद्दी था। आगे बढ़कर पीछे हटना उसने कभी नहीं जाना। परन्तु मैं अवसरवादी था। इसलिए इस बात पर हम कभी सहमत नहीं हो सके। वह मुझे बुजदिल समझता था और मेरो दृष्टि में वह जिद्दी और झक्की था। उम्र के साथ ये विचार इतने दृढ़ हो गये कि हमने चुपचाप इसे आदत के रूप में स्वीकार कर लिया और विद्यार्थी जीवन को पीछे छोड़ एक नई दुनिया में प्रवेश किया।

आज से तीन वर्ष पूर्व आदित्य का ऐसे ही कोई पत्र मिला होता तो शायद मैं अपनी विजय पर मुस्करा उठता और एक वृद्ध अनुभवी की तरह कहता ''मैं तो पहले ही कहता था कि....।'' परन्तु आज यह जीत मेर अंतर को मथ रही है। लगता है सत्य की हत्या करके झूठ के माथे पर खून का टोका लगा दिया गया है। आज मुझे सब कुछ गवारा है। यदि आदित्य की लिखी बातें सच न हुईं। उसने लिखा है, ''मैं हार गया हूं बंधु! तुम जीत गये। अब इस पथ पर और नहीं चल सकता। सामर्थ्य की पेंदी तक पहुंच गया हूं। नहीं बंधु! नहीं! अब और चलने को मत कहो। कब तक अकेला चलता रहूंगा। जिसका सहारा था वह तो बीच में ही छोड़कर चली गयी। शीला चल बसी। मैं टट चुका हूं! सीमा तक।''

जब आदित्य इस विभाग में आया, मैं दो वर्ष का अनुभव बटोर चुका था। मेर सेक्शन के ही समीप उसे भी सेक्शन दिया गया। उसके अधीन भवन निर्माण का कार्य था, जिसकी नींव खोदी जा चुकी थी और कंक्रीट का काम चालू था। जब वह अपने सेक्शन का कार्य भार ग्रहण कर चुका तो मैंने उसे बधाई देते हुए कहा, ''यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें आते ही काम मिल गया अन्यथा यहां कितने अधिदर्शक रोजगार मिलने के बाद भी बेरोजगार बैठे रहते हैं।'' मुझे क्या मालम था कि जिसे मैं उसका सौभाग्य कह रहा हूं वह उसके दुर्भाग्य की शुरुआत थी।

हम वहीं पर खड़े थे जहां कंक्रीट मिलाने का कार्य हो रहा था। आदित्य मिस्त्री को बुलाकर पूछा ''कंक्रीट कितने का बना रहे हो?''

''एक : आठ : दस का साब!'' मिस्त्री बोला।

''किसने कहा?''

''ठेकेदार ने।''

''लेकिन, बनाना तो एक : पांच : आठ है न।''

''.....'' मिस्त्री चुप रहा।

''नींव की कंक्रीट एक : पांच : आठ का बनाना है समझे।'' आदित्य बोला।

''लेकिन साब.....।'' मिस्त्री कुछ कहना चाहता था।

''मैं जो कहता हूं वह करो, समझे! मेर पास यह सब धांधली नहीं चलेगी।'' आदित्य जोर से चिल्लाया।

पता नहीं वह और क्या कहता! मैंने कहा, ''आदित्य, चलो मेर सेक्शन की ओर चलें।'' कुछ दूर जाने के पश्चात बोला ''आदित्य! आरम्भ से ही ऐसी सख्ती ठीक नहीं है। यहां विद्यार्थी जीवन का लड़कपन नहीं चलेगा। अब तुम एक सरकारो मुलाजिम हो, हर कदम सोच समझकर उठानी चाहिए। जानते हो ठेकेदार कार्यपालन मन्त्री का खास आदमी है। कल यह पता चलते ही ठेकेदार शिकायत करगा और साहब फटकारंगे।''

''मैं तुम जैसा बुजदिल नहीं हूं। चाहे जो हो, परन्तु यह धांधली मैं हरगिज नहीं होने दूंगा।'' क्रोध से उसका चेहरा तमतमा गया था।

''जिद्द मत करो आदित्य! आदर्श और सिद्धांत की बातें मैं भी जानता हूं लेकिन इससे पेट नहीं भरता। तुम तो शिकायत को दुर्बलता का प्रमाण या ठकुर-सहाती की छुद्र चेष्टा ही समझते हो, परन्तु तुमने कभी यह सोचा कि शिकायत का आधार ठोस धरातल भी हो सकता है! मैं तुम्हें सच्चाई बता रहा हूं। परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढाल लेने में ही बुद्धिमत्ता है। चोरों के मध्य शरोफ हमेशा एक खटकता हुआ कांटा है जिसे हर आदमी निकाल फेंकने के ताक में रहता है। जब तुम्हें तंग किया जायेगा कोई तुम्हारो सहायता नहीं करगा तब तुम किस-किस से न्याय की याचना करोगे। भविष्य की चिन्ता में वर्तमान को क्यों खो रहे हो? वह देखो उस भवन में जो प्लास्टर दिया जा रहा है वह एक : दस का है परन्तु उसे एक : आठ का कीमत दिया जाता है मैं नहीं चाहता फिर भी ऐसा करता हूं। बहुत कुछ नहीं चाहते हुए भी करना पड़ता है।''

आदित्य कुछ नहीं कह पा रहा था। वह खामोश चलता रहा। निश्चय ही वह मन ही मन मुझे कायर, बुजदिल कहकर धिक्कारता रहा होगा।

दूसर दिन जब हम कार्यस्थल पर पहुंचे तो मेरो आशंका के अनुरूप वहां ठेकेदार मौजूद था। उसन हम दोनों को नमस्ते कहा। हम लोग नमस्ते का जवाब दकर खड़े हो गये। आज भी कंक्रीट का काम हो रहा था। आदित्य रत और सीमेंट के मिश्रण को देखत हुए कहा, ''यह कितने का कंक्रीट बनवा रहे हैं ठेकेदार साहब?''

''एक : आठ : दस का।'' दो ट्क जवाब।

''लेकिन बनाना तो एक : पांच : आठ का है न?''

''जी हां।''

''फिर.... ?''

''हर नये आने वाले साहब यही कहते हैं।''

आदित्य उसकी स्पष्टवादिता पर हैरान रह गया।

''मैंने गलत तो नहीं कहा?''

''नहीं साब।''

''तब ऐसा क्यों कह रहे हैं?'' आदित्य भीतर ही भीतर झल्ला रहा था।

''बिलकुल स्पष्ट है साब! जब मुझे दो पैसा नहीं मिलेगा तो आप लोगों को कहां से दूंगा। अपनी जेब से तो नहीं दे सकता।'' ठेकेदार की नपी-तुली आवाज से स्पष्ट था कि वह इस परिस्थिति के लिए तैयार होकर आया था।

''मुझे आपके पैसे की जरूरत नहीं है। कंक्रीट एक : पांच : आठ का बनवाइये अन्यथा काम बन्द कर दीजिए।'' आदित्य बौखला गया था।

बुजुर्ग ठेकेदार शायद अनुभवी था। अभी भी उसने नम्र स्वर में बोला, ''अकेला आपके न लेने से क्या होता है साब। और सबको तो चाहिए। उन सबका क्या होगा?''

''मैंने सबका ठेका नहीं लिया है'' आदित्य और क्रोधित हो उठा।

ठेकेदार काम बन्द करा कर चल दिया। दोपहर के पश्चात कार्यपालन मन्त्री ने आदित्य को बुलाया था। वह लौटा तो गुस्से से लाल-पीला हो रहा था और चेहर पर विवशता की परछाईं छाई हुई थी। उस दिन उसने इतना ही कहा था, ''दो चार दिन में शायद मेरा स्थानांतरण हो जायेगा।''

दो दिन पश्चात प्राप्त एक आदेश ने उसकी आशंका की पुष्टि कर दी। और इस आदेश के साथ जैसे उसका दुर्भाग्य भी साथ गया। कोटा वैसे भी बस्तर जिला का एक बीहड़ और भयावह जंगली इलाका है। बाद में आदित्य ने लिखा था कि पता नहीं अनुविभागीय अधिकारो ने दबाव में आकर अथवा स्वेच्छा से उसको और भीतरो क्षेत्र में पदस्थ कर दिया था। यहां भी उसके स्वाभिमान अथवा अहं ने अपने अधिकारो से यह भी न कहने दिया कि मेर साथ दो और भी जानें हं जिनके गले की रस्सी भी मेर ही साथ बंधी हुई है। वह चुपचाप चला गया साथ में पत्नो और बच्चे को भी ले गया।

जंगली जलवायु अनुकूल नहीं बैठा। कुछ ही दिनों में पता चला था कि उसके बच्चे की तबियत खराब हो गई थी और वह काल-कवलित हो गया था। इस दुर्घटना के बाद भी उसका मनोबल वैसे ही दृढ़ था। कहीं रच भर भी कमी नहीं आई थी। हां, एक बार उसने कहा था ''जब मैं इस घटना को अपने सत्य के प्रति आग्रह के परिणाम के रूप में पाता हूं तो मन क्षोभ से भर जाता है। अन्यथा इसे भाग्य की विडंबना समझकर मन को शान्त कर लेता हूं। व्यर्थ किसी को दोष क्यों दूं?'' मैंने बहुत भांति से समझाने का प्रयत्न किया कि इसके जिम्मेदार तुम हो परतु मुझे सफलता नहीं मिली थी।

और आज जब उसकी पत्नो भी उपचार के अभाव में स्वर्ग सिधार गई है उसका सम्पूर्ण अस्तित्व जैसे टटकर बिखर गया है। मुझमें इस सत्य को स्वीकारने की सामर्थ्य नहीं है। आज वह सम्मुख होता तो उसे झकझोर कर कहता, ''बुजदिल, इतने से हार गये। क्यों झूठी शान बघारते थे। सत्य के राह पर चलना क्या इतना आसान है? नहीं आदित्य! नहीं, मन का संबल मत छोड़ा, सत्य का पुजारो कभी अमीर नहीं हुआ, कभी सुख नहीं भोगा। फिर तुम क्यों आशा रखते हो? मुझे जीत नहों चाहिए आदित्य! अपनी हार बदल लो। हर सत्यावलम्बी इसी तरह जीवनपर्यन्त जला है आदित्य, तुम भी जलते रहो। शायद कभी यह लौ चिराग बन जाये। इस गहन अन्धकार में भले ही किसी भूला पथिक का सहारा न बन सके, अपनी जगह को तो आलोकित करगा ही।''

11. कुसंग

मैं मन-ही-मन निश्चय-सा कर लेता हूं—अब कोई बुलाने आया तो मुझे कह ही देना चाहिए—'अर भाई, ये लोग नहीं जायेंगे। तुम भोले हो, व्यर्थ में परशान होते हो। आज के युवकों के लिए धर्म-कर्म का कोई मूल्य नहीं। धर्माचरण दंभ और साधु-सन्त निकम्मे और बागी हैं।' फिर सोचता हूं—कहीं मैं इनके भाग्य पर ईर्ष्या तो नहीं कर रहा हूं। या ऐसा कह देना क्या मेर हित में होगा। मैं बूढा हो गया हूं इसलिए इस संदर्भ की भांति इन युवकों की दृष्टि में मेरा और मेरो बातों का भी कोई मूल्य नहीं है। एक घण्टा से अधिक हो गया है इनकी बकबक सुन रहा हूं और इससे भी अधिक इनको ताश खेलते हो गया है। इस बीच संदेशवाहक रामायण पाठ में सम्मिलित होने के लिए दो बार आमत्रित करके लौट चुका है। परतु अभी तक ये लोग निश्चित नहीं कर पाये हैं कि रामायण पाठ में शामिल हों अथवा नहीं।

मेरो सीध में बैठा युवक जिसके मुख पर सज्जनता झलक रही है निश्चय ही मेरा पौत्र नहीं है। उसकी मुख-मुद्रा और भाव-भंगिमाओं से रामायण पाठ में शामिल होने की आतुरता प्रकट होती है। वह कई बार अपने मित्रों से वहां चलने को आग्रह कर चुका है परन्तु उनमें से कोई भी उठ नहीं रहा है। मेज पर ताश बड़े जोर से फेंके जा रहे हैं और बाजी की रकम बढ़ती ही जा रही है। यानी खेल में रग आ रहा है। लगता है वह अपने साथियों की अवहेलना नहीं कर पा रहा है और अपने आंतरिक विचारों का प्रबलता से दमन कर रहा है। बार-बार मन में आता है—उस युवक को इन तीनों का संग छोड़ देना चाहिए। इनकी नीयत अच्छी नहीं लगती। आदमी को सदा कुसंग से बचना चाहिए। परन्तु वह उठ ही नहीं रहा है।

ये चारों युवक सरकारो मुलाजिम हैं। इसलिए इस गांव में श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। आज हिन्दुओं का पर्व है और छुट्टी है। इन शिक्षित संभ्रान्त व्यक्तियों को समय का सदुपयोग ताश खलकर करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नजर नहीं आया। अब ताश खेलने में जो रस मिल रहा था उसकी उम्मीद पाठ में नहीं थो और वे इस बात को बड़ी तीव्रता से महसूस कर रहे थे कि वहां उबा देने वाली नीरसता और शुष्कता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा। कम से कम चारों में से तीन युवकों के लिए यह सौ फीसदो सत्य था। एक में धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा थी तो तीन में घोर अनास्था। यदि यह आंकड़ा हमार देश के युवकों के लिए सही रहा तो हमार समाज का क्या होगा यह कहना कठिन नहीं है। हम अन्धानुकरण की सलाह नहीं देते परन्तु धर्म के नाम से सर्वथा मुंह फेर लेना कहां तक उचित है! पता नहीं आज के युवकों में धर्म के प्रति ऐसी अनास्था क्यों है? धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचार का प्रतिकार करने के बजाय चुपचाप आंख मीच लेना क्यों उचित समझते हैं?

जब तीसरो बार बुलाये जाने की संभावना सिर पर सवार हो गई तो मेरो सीध में बैठा युवक बोला ''अब हमें चलना चाहिए, लोग प्रतीक्षा कर रहे होंगे''.....तीनों ने समझा इसे जीती हुई बाजी हार जाने का भय होने लगा है।

''अर; वहां क्या रखा है! तुम नहीं जाओगे तो रामायण पाठ नहीं होगा क्या?''.....यह दूसरा युवक बोल रहा था, ''जो आनन्द यहां मिल रहा है वहां नहीं मिलेगा। फिजूल वक्त बरबाद करने से क्या फायदा! आनन्द की प्राप्ति ही हर जीव का लक्ष्य है। इसीलिए लोग घर का त्यागकर संन्यास ले लेते हैं और तुम उसे ही छोड़कर जाना चाहते हो, यह कहां की अक्लमंदी है! अर भाई, अब वे दिन लद गये जब लोग फुर्सत में होते थे और उनके पास काफी वक्त था। तब रामायण, गीता जैसे ग्रंथों की रचना करते तथा पढ़ते-पढ़ाते थे। अब इस भौतिकवाद की भाग-दौड़ में, जहां मरने वालों को भी लौटकर देखने का समय नहीं है, ऐसी मोटो-मोटो किताबें कौन पढ़ेगा? धर्म में तुम्हारो बहुत आस्था है तो इस तरह की दो-चार ग्रंथ खरोदकर आलमारो में सजा दो। लोग भी कहेंगे, 'हां भाई लड़का बड़ा आस्तिक है' और तुम्हें भी संतोष होगा। क्यों भाइयो, सच कहा न, मैंने?' उसने तीसर और चौथे युवक से पूछा।

''बिलकुल सच कहा आपने।''.....दोनों तपाक से बोले।

''अपन भी बिलकुल सच्ची बात कहते हैं''....यह तीसरा युवक है जो मेरो ओर पीठ करके बैठा है—''यह धर्म-कर्म सब ढकोसला है। बिलकुल निस्सार और थोथा। वहां छल, कपट, धोखा और आडम्बर के अतिरिक्त कुछ नहीं है! वैसे भी साधुओं के वेश में घूमने वाले अधिकतर संन्यासियों का जीवन ठग और पलायनवादियों का जीवन है जो जीवन के संघर्ष से दूर भागे हुए हैं। इसीलिए कहता हूं यह दिखावा छोड़ो। इससे कुछ नहीं बनने का।'' वह थोड़ी देर रुका और पहले युवक की ओर लक्ष्य करके फिर कहने लगा, ''धर्म में इतनी ही आस्था है तो रामायण घर में पढ़ लेना। वहां जोर-जोर से गला फाड़-फाड़कर लोगों को दिखाना कि हम रामायण पढ़ रहे हैं, पढ़े-लिखे होकर भी बिलकुल गंवार जैसी बातें करते हो।''.....

अब यह चौथा युवक जो बोल रहा है वह मेरा पौत्र है, ''हां यार, यह सब धर्म-कर्म की बातें बूढ़ों को ही शोभा देती हैं। यह उन्हीं के लिए रहने दो।'' ''है, न बाबा!'' मेरा पौत्र बड़ा शरारती है। उसने मुझे भी यहां घसीट लिया। कुछ कहते नहीं बना इसलिए कहना पड़ा, ''हां हां...।'' वे चारों हंस पड़े वह फिर बोलने लगा, ''अर जवानी रहते मौज उड़ा लो, फिर बुढ़ापे में क्या करोगे? जवानी बार-बार नहीं आती। इसलिए यह धर्म-कर्म वाला रोग मत लगाओ। इसके लिए सारी उम्र पड़ी है। रामायण पाठ में जाकर व्यर्थ में उकता जायेंगे। यहां कम से कम मनोरजन तो हो रहा है। फिर सब धार्मिक पुस्तकों में धरा क्या है? अच्छे-भले लोगों को निष्क्रिय और संकुचित बना देने वाली बातों की भरमार है।''

''तुम सब क्या बकते हो....।'' यह मेरो सीध में बैठा पहला युवक था। उसके चेहर पर बौखलाहट नहीं थी, स्वर में तीखापन और सुलझे हुए विचारों की दृढ़ता थी—''तुम सब कुछ नहीं जानते। भौतिकता की चकाचौंध में अन्धे की तरह दौड़ रहे हो इसलिए सत्य-असत्य कुछ नहीं सूझता। तुम्हारी दृष्टि ही मलिन हो गई है। इसलिए धर्म आडम्बर और साधु ढोंगी दिखाई देते हैं। चूंकि तुम सब में वह त्याग की शक्ति नहीं है इसलिए उन्हें बदनाम करने की चष्टा करते हो। कुछ वेशधारी ठगों के कारण सब साधु-समाज को कलंकित करने की चेष्टा कतई उचित नहीं है। इस संसार में धर्म और साधुओं का समाज न होता तो सारी दुनिया नरक हो चुकी होती हैं।''

तीनों व्यक्ति निरत्तर हो गये और चारों के बीच एक गहरी चुप्पी छा गई। मेरो सीध में बैठा युवक पत्ते पीसकर बांटना शुरू कर दिया। चारों फिर ताश की दुनिया में खो गये और रामायण पाठ वाली बात हवा में उड़ गई।

खेल अधिक देर तक नहीं चल सका। दूसर नम्बर के युवक के पास पैसे चुक गये थे और वह बगलें झांकने लगा था। उसने मेरो सीध में बैठे पहले युवक से उधारो की पेशकश की। अब भी वह अपने हार हुए पैसे लौटा लेना चाहता था। पहले युवक ने कहा, ''जुआड़ी से उधार लेकर जुआ नहीं खेला जाता।'' दूसरा व्यक्ति थोड़ा चिढ़ गया, बोला, ''मैं घर से ही पैसा लेकर आता हूं।''

वह चला गया तो उस कमर में तीन ही व्यक्ति बच रहे। पहले के जीत पर उन दोनों को भी ईर्ष्या हो गयी थी पर वे इसे जज्ब कर जाना चाहते थे। इस कसमकस में वे शांत बैठे थे और उनके मध्य अनजाने ही उदासी आकर समा गई थी। इस उदासी को भंग करते हुए पहला व्यक्ति बोला, ''यार, ताश तो कभी भी खेल सकते थे आज रामायण पाठ ही सुन लेते!....''

पहले व्यक्ति का जीतकर उठना उन दोनों को भीतर ही भीतर कचोट रहा था और वे उसे किसी भी कीमत पर रोके रखना चाहते थे। अब एक से रहा नहीं गया, बोला, ''अधिक मत बनो, हम भली-भांति जानते हैं कि तुम कितने धार्मिक हो! अर, धर्म में हमारी भी आस्था है! हम भी आस्तिक हैं! अच्छा, चलो हम तुम्हें पूरी रामायण यहीं सुना देते हैं। तुम भी क्या याद करोगे कि कोई मिला था!''

अब तक दूसरा युवक पैसे लेकर आ गया था। पहला युवक पत्ते बांटना आरम्भ कर दिया। दूसर युवक ने अपनी ताश उठाकर देखते हुए कहा, ''यार, इनको रामायण सुना ही डालो, नहीं तो फिर जाने की जल्दी मचायेगा।'' इस पर तीनों हंस दिये और पहला व्यक्ति खामोश ही बना रहा। तीसर व्यक्ति ने रामायण सुनाना आरम्भ किया, ''अयोध्या नगरो में राजा दशरथ राज्य करते थे। उसके चार पुत्र थे, राम बड़ा था जिसने एक पुराना धनुष तोड़कर जनक-पुत्री सीता से शादी कर ली जिसे रावण चुरा ले गया। बाद में राम, रावण को मारकर सीता को ले आये फिर जंगल में छोड़ दिये। वहां राम के लव-कुश दो पुत्र हुए। बस, यह रही पूरो रामायण, जिसके लिए तुम परशान थे। अर, वहां तो इतना भी नहीं जान पाते।'' ''वाह गुरु, वाह! क्या संक्षेप में रामायण कह दी। इतनी संक्षेप में तो सारो रामायण कोई भी नहीं कह सकता। शायद तुलसीदास जी भी नहीं कह पाते।'' शेष दोनों युवक बोले।

बाजी कुछ देर चलती रही अन्य दो सज्जनों के पैसे खत्म हो गये थे। पहला युवक बोला, ''आप लोग हार गये हैं अत: एक बार मुफ्त में खेल लो और यह अन्तिम दावं होनी चाहिए।'' शर्त के अनुसार अब भी वे हार गये। उन दोनों ने एक भद्दी-सी गाली दी, ''अपनी किस्मत ही 'ओ' है तो क्या करंगे।'' और खामोश बैठ गये। मेरो सीध में बैठा युवक थोड़ा कसमसाया। उसके चेहर पर एक क्षीण आशा की चमक जगी, बोला, ''अब चलें शायद प्रसाद ही मिल जाये। रामायण पाठ तो समाप्त हो गया होगा।''

''नहीं जायेंगे ऐसा कहते नहीं बना इसलिए कहना पड़ा, ''चलो'' यद्यपि उनके भीतर जो हो रहा था, वे ही जानते हैं।

जब वे निर्दिष्ट स्थल पर पहुंचे तो वहां कोई नहीं था। हार हुए तीनों व्यक्ति मन ही मन मुस्करा रहे थे परन्तु पहला व्यक्ति उदास हो गया था मानो वह जीती हुई बाजी हार गया हो।

12. जुगनू

मई की तपती दुपहरो। धूप की गरमी और पसीने से सारा बदन चिपचिपा रहा था। ऐसे में यात्रा करना बड़ा बुरा लगता है। जब बस-Sटण्ड पहुंचा तो लगा जैसे गलती से डिपो आ गया हूं। ढेर सारो राज्य परिवहन की लाल बसें जिन्हें लोग प्यार से लाल डब्बा कहते हैं, खड़ी थीं। पूछने पर पता चला कि डीजल और पेटोल की कमी से सब गाड़ियां खड़ी हैं। जिसमें डीजल है उसका चालक खाने गया है और परिचालक बाजार में खरोदारो कर रहा है। यात्री दो-तीन दिन से परशान हैं क्योंकि दो दिनों से वेतन वृद्धि के लिए परिवहन कर्मचारियों की हड़ताल चल रहो थो। टिकट लेनेवालों की लम्बी कतार लगी हुई थी। लोग सिर पर रुमाल अथवा अंगोछा बांधकर धूप से बचने की कोशिश कर रहे थे।

उस लम्बी कतार के पीछे खड़े होने की कल्पना मात्र से ही मेरा सिर चकराने लगा था। काउण्टर के पास टिकट के लिए खड़े लोग आपस में बतिया रहे थे, ''अंधेर जमाना आ गया है। ऐसी सरकार कितने दिन टिकेगी! गाड़ी है तो डीजल नहीं, डीजल है तो चालक नहीं, चालक है तो परिचालक नहीं...।'' एक नेता जैसे व्यक्ति को यह अच्छा नहीं लगा, वह बोला, ''इसमें सरकार का क्या दोष! सार कर्मचारो ही गद्दार हैं। काम तो करते नहीं, जब देखो तब वेतन वृद्धि के लिए हड़ताल करते हैं। जितने अपने अधिकार के प्रति जागरूक हैं उससे आधा भी अपने कर्तव्य का ध्यान नहीं। अब इसी बस के चालक और परिचालक को देखो, गाड़ी खड़ी है, समय हो गया है। यात्री बेचार धूप में खड़े परशान हैं पर हजरत लोगों का पता ही नहीं। परिवहन के सार कर्मचारो ऐसे ही हैं, मनमौजी।'' मैंने कुहनी से थोड़ी जगह बनाया और काउण्टर तक खिसक आया।

नेता जैसे उस व्यक्ति की बातें पास खड़े एक युवक को पसन्द नहीं आयी। निश्चय ही वह किसी दफ्तर का बाबू रहा होगा। वह थोड़ा तैश में आकर बोला, ''इसके लिए कर्मचारियों को दोष क्यों देते हैं, यहां की सारो जनता ही निकम्मी हैं, तो कोई क्या कर! जितना पैसा उतना काम। अधिक काम करने से क्या फायदा? सरकार तो उतना ही वेतन देती है। इस आसमान छूती मंहगाई और भ्रष्टाचार के जमाने में कर्मचारियों को जो कुछ मिलता है उससे तो आराम से दो जून की रोटो भी नहीं जुट सकती। ऐसी परिस्थति में कर्मचारो हड़ताल न करं तो और क्या करं! जो परिस्थितियां हमार देश में हैं वैसे ही अन्य देश में होतीं तो जनता बगावत कर देती। जन आन्दोलन हो जाते और कोई न कोई हल निकाल लिया जाता। परन्तु यहां तो जनता का राज्य है और जनता भोली और निकम्मी है।''

इस बहस का फायदा उठाकर मैं टिकट प्राप्त करने में सफल हो गया था। इस देश में हमेशा ऐसे ही लोग फायदे में रहते हैं जो वक्त देखकर चोट करते हैं। लोग अब भी धूप में बड़ी लम्बी कतार में खड़े थे और लोगां के खिसकने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं सीट में बैठकर सोचने लगा, इनमें से सही कौन कह रहा था! वे लोग, नेता जैसा व्यक्ति अथवा वह नवयुवक! गरमी से जी मिचलाने लगा था। आखिर इस गरमी में मुझे मरने की क्या आवश्यकता थी? सरकारो काम था, आराम से करते। इस तरह जान देने से फायदा ही क्या है! कल कुछ हो गया तो कौन सरकार मेर बाल-बच्चों को पाल-पोस देगी। लेकिन फिर ध्यान आया इसमें मेरा अपना ही कार्य प्रमुख है। सरकारो काम के बहाने अपना ही काम करने जा रहा था। बड़े दफ्तर वाले भी ऐसे ही मौके की तलाश में रहते हैं। जानते हैं इस समय लोगों की अटकी रहती है। लोग आते हैं और जरूर कुछ लेकर ही आते हैं।

दखते ही देखते बस ठसाठस भर गई। जो टिकट से वंचित थे, वे बस-चालक और परिचालक की खुशामद कर रहे थे। जिनके पास टिकट था वे बे-टिकट लोगों को इस तरह उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे मानो उन्होंने बस को खरोद लिया हो अथवा वे स्वयं बस के मालिक हों।

बस चली तो स्टण्ड से ही कई अतिरिक्त सवारो लेकर चली। नाका के उस पार बस की प्रतीक्षा

में बहुत से यात्री पहले ही खड़े थे जिन्हें परिचालक ने भेज रखा था। अब गाड़ी इतनी भर गई कि लोगों का सीधा खड़ा रह सकना कठिन प्रतीत हो रहा था। मार गरमी के सबका बुरा हाल था। किसो तरह गाड़ी चली तो जी में जी आया। परिचालक यात्रियों से टिकट के पैसे लेकर जेब में डालते जा रहा था। सब लोग चुपचाप जेब से पैसे निकालकर देते जाते थे। कोई भी टिकट मांगकर नीचे उतरने का खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। परिचालक पैसे वसूल कर सामने चालक के पास खड़ा हो गया तो लोग खुसुर-फुसुर करने लगे। ''दो-ढाई सौ पक गया....।''

''अर इन्हीं लोगों का राज्य है भैया...।''

''एकदम अंधेर मच गया है, इसीलिए हर साल राज्य परिवहन घाट में जाती है। सबको कर्मचारो खा जात हैं। अर एक की बात हो तो कोई कहे। ऊपर से नीचे तक सब चोर हैं....।'' शायद यह व्यक्ति किसी पाठशाला का अध्यापक था—''चालक और परिचालक बेईमानी न कर इसलिए यहां चेकर होता है, उड़नदस्ता वाले चेक करते हैं; परन्तु किसी भी माई के लाल में वफादारो नहीं। सब मिलाकर सरकार की कमाई बांट लेते हैं। अर, और तो और, लोग बस के कल-पुर्जे तक बेच देते हैं।''

''सब जगह यही हाल है साब! कोई क्षेत्र खाली नहीं बचा। सरकार का कोई भी विभाग शेष नहीं जो भ्रष्टाचार और बेईमानी से अछूता हो। रवन्यू विभाग, जहां न्याय और इन्साफ की दुहाई दी जाती है लोगों के गले में छूरियां चलती हैं और कुछ चालाक लोग सीधे-सादे जनता का पेट काट लेते हैं। यही हाल लोक निर्माण विभाग का है, न जाने कितने बांध और तालाब केवल कागज में बनकर रह जाते हैं।''

एक मोड़ पर बस झटका खायी तो सब हड़बड़ा गये और बातों का सिलसिला खत्म हो गया। मोड़ और ढलान पर लोग एक-दूसर के ऊपर गिर जाते, क्रोध से आंखें तररते और दूसरो ओर मुंह फेर लेते थे। जैसे-तैसे सौ मील चल पाये थे कि चालक ने गाड़ो रोक दी। परिचालक हड़बड़ाकर उतरा और यात्रियों में कुछ सनसनाहट-सी फैल गई। बिना टिकट यात्रियों में कुछ डर गये थे और कुछ के मन में गुदगुदी उठ रही थी। सामने टिकट चेकर खड़ा था। एक ने खिड़की से झांककर देखा और कहा, ''अर टिकट चेकर है, वह भी अपना हिस्सा लेकर चला जायेगा।'' और वह पीछे की सीट पर सिर रखकर ऊंघने लगा। चेकर परिचालक से टिकट बुक और कलेक्शन सीट लेकर यात्रियों को गिनने लगा। एक व्यक्ति ने उस ऊंघने वाले व्यक्ति को उंगली करके बोला, ''देखो कैसा नाटक कर रहा है जैसे अभी उसको जेल भिजवा देगा।'' जितन व्यक्तियों ने यह आवाज सुनी सबने उपहास के भाव से मुस्करा दिया।

बत्तीस यात्री बिना टिकट यात्रा कर रहे थे। चेकर नीचे उतर आया। एक ने फिर चुहल किया ''अब सौदा तय हो जायेगा....।'' परन्तु चेकर बिना टिकट यात्रियों की प्रविष्टियां कर रहा था। अब तक खामोश खड़ा परिचालक गिड़गिड़ाया, ''साब! यह आप क्या कर रहे हैं?

''मैं अपना कर्तव्य कर रहा हूं।'' चेकर ने कहा।

''यह मेरो जिन्दगी का सवाल है, साब।''

''यह आपको पहले ही सोचना चाहिए था।''

''आपको हिस्सा मिल जायेगा साब!'' परिचालक ने कहा।

'बको मत.....'' चेकर चिल्लाया....''मुझे तुम जैसे गद्दारों से सख्त नफरत है। मैं तुम्हें किसी भी कीमत पर नहीं छोड़्गा।''

''साब! आप बेकार चिल्ला रहे हैं....'' परिचालक ने धमकी भर स्वर में कहा, ''शायद आपको पता नहीं राज्य परिवहन में मेरा भाई महाप्रबन्धक है। मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा और आपको नौकरो से हाथ धोना पड़ेगा।''

''तुम इसकी चिन्ता मत करो....।'' परिचालक को स्लिप थमाते हुए चेकर ने कहा, ''यह लीजिए

मैंने आपके विरुद्ध सारी प्रविष्टियां कर दी हैं। आप महाप्रबंधक से कहना कि यह मैंने किया है।''

परिचालक ने जल-भुनकर विवशतापूर्वक स्लिप लिया और सीटी बजाकर बस चलने का संकेत दिया तो उस ऊंघने वाले व्यक्ति ने आश्चर्य से पूछा, ''क्या सचमुच स्लिप भर दिया?'' परिचालक ने मरी हुई आवाज में कहा, ''हां!'' ''तब तो गजब हो गया'' एक साथ कई आवाज उभरी। परन्तु शायद परिचालक नहीं सुन पाया वह आगे जा चुका था।

13. रक्षक या भक्षक

नोटों को गिनते हुए महेश बाबू की आंखें खुशी से चमक उठीं और चेहरा आत्मतृप्ति से दमकने लगा। महीने भर की कमाई है—पूर तीन सौ। दीवाल घड़ी साढ़े पांच बजा चुकी है। वह सामने झांकता है। साहब की उपस्थिति उसे अखर जाती है। वह अपने आप बड़बड़ाने लगता है—यह 'अफसर' है कि घनचक्कर! इतना भी नहीं समझता, आज वेतन मिला है तो घर के लिए सामान वगैरह खरोदना पड़गा।

नोटों को जेब में रखते हुए वह सोचने लगा बहुत है ईमानदारो से गुजर तो हो जाता है। आदमी थोड़ा संतोषी और त्यागी हो तो अपनी स्थिति में भी अमन चैन से रह सकता है। महीने के लिए तीन सौ से तीन प्राणियों का निर्वाह होना कोई मुश्किल नहीं। पत्नो बड़ी मुस्तैदी से घर के आवश्यक सामानों की सूची तैयार करती है और माह के अन्त में कुछ न कुछ बचा लेती है। आज दोनों मिलकर खरोदारो करते हैं और वक्त जरूरत की चीजें बाद में वह अपनी सुविधानुसार ला दिया करता है। फिर भी आज का दिन विशेष खशी का होता है।

चपरासी साहब के चले जाने की सूचना देता है तो उसकी विचारधारा टट जाती है, ''चल दिया...।'' वह लापरवाही से उठते हुए चपरासी के शब्दों की पुनरावृत्ति करता है, ''पौन घंटा खा गया।.....'' वह अपना असंतोष वहीं थूक, दफ्तर से निकल सड़क पर आ गया। प्रतीक्षित पत्नो की सूरत स्मृति में उभर आई। उसे मालूम है आज कोई प्रतिकूल नहीं होता। पत्नो को उसकी प्रतीक्षा रहती है। दूकानदार हंसकर बतियाता है और ग्वाला मुस्कराकर दूध देता है। दो-चार दिन यह सब बड़ा भला लगता है फिर सब कुछ जैसे बासी हो जाता है।

एकाएक बिजली के निर्मल प्रकाश में सारा शहर डूब गया। वातावरण में हल्की ठंडक व्याप्त है। शाम को इस शहर की सकरो सड़कें भीड़ के कारण और भी सिमट जाती हैं। कुछ ही क्षणों में वह चौराहा पर आ गया। यहां भीड़ सैलाब-सी उमड़ आई है।

चौराहों पर चारों किनार में लगी लाल-पीली बत्तियां आंख मिचौली खेल रही हैं। वह उसी आतुरता से भीड़ में सम्मिलित हो गया। कुछ ही कदम चला था कि एक अपरिचित युवती उसके कंधा से टकरा गई। उसके क्षमा-याचना के पूर्व ही वह युवती बरस पड़ी, ''आवारा, गुण्डा....देखता नहीं..पराई औरत को धक्का मारता है....।'' गाली सुनते ही उसका हलक सूख गया। चेहरा फक-सफेद पड़ गया। भीड़ की कई आंखें प्रश्नचिह्न की तरह खड़ी हो गईं। वह युवती अब भी बड़बड़ाये जा रही थी, ''यहां शरोफों का सड़क पर चलना भी दूभर है। आवारा लोग दिन-दहाड़े गुण्डागर्दी करते हैं।'' भीड़ से कुछ निर्णायक हाथ उठे और तुरन्त अपना निर्णय दे दिये। फिर मानो इसी के ताक में खड़ा हमारा समाज-रक्षक आया और महेश बाबू को कुछ भद्दी गालियां देता हुआ थाना ले गया। शायद इन खाकी वर्दीधारियों को सरकार ने जैसे नौकरो के साथ ही गाली-गलौज करने और निममतापूर्वक पीटने का अधिकार भी सौंप दिया है।

अब वह सिपाही के साथ इंस्पेक्टर के सामने था।

''यह मुर्गा कहां मिला?''

''चौराहा पर....।'' सिपाही हंस दिया।

''क्या बात है?''

''एक युवती को छेड़ता था।''

''सूरत से तो शरोफ लगता है।''

''हरामी है।''....वह फिर हंसा।

''कुछ उम्मीद है?''

''हां, न होता तो बाहर से ही भगा देता।'' सिपाही बोला।

''क्यों र आवारागर्दी करता है।'' इंस्पेक्टर गुर्राया।

''नहीं साहब, मैं निर्दोष हूं।''

''बक-बक मत करो....।''

''मैं सच कहता हूं।''

''सच और झूठ का अभी पता चल जाता है।'' इंस्पेक्टर कुर्सी पीछे सरकाकर बैठ गया।

महेश बाबू खामोश हो गये। पत्नो और बच्चे की याद उन्हें बेचैन किये दे रही थी। वह बार-बार समय देखता और घर पहुंच जाने को कल्पना करता। काफी वक्त बीत जाने से उसकी अधीरता बढ़ गई। वह इंस्पक्टर से अनुनय-विनय करने लगा–''मैंने कुछ नहीं किया साहब! मैं बेकसूर हूं, मुझे छोड़ दीजिए। मेरो पत्नो मेरो राह देखती होगी। मेरा बच्चा.....।'' वह धैर्य खो बैठा।

''साले बदमाशो करत समय यह सब नहीं सूझा।''

''मैंने कुछ नहीं किया है साब!'' उसके स्वर में दीनता थी। ''तूने कुछ नहीं किया है...?'' इंस्पेक्टर के स्वर में व्यंग्य था। उसने उठते हुए एक थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया, ''बन्द कर दो साले को...।''

वह बहुत गिड़गिड़ाया। हाथ-पांव जोड़े, पर अन्तत: उसे ढकेलकर एक कमर में बन्द कर दिया गया। बेचारा, अवश दीनतापूर्वक देखता रहा।

कुछ क्षण पश्चात दरवाजा खुला और इंस्पेक्टर एक छोटा काला डंडा लिए सामने खड़ा हो गया। देखते ही महेश बाबू के होश उड़ गये। वह कसाई के बकर की तरह विवश-सा देखता रहा। इंस्पेक्टर खा जाने वाली नजरों से देखता हुआ चिल्लाया, ''तूने उस औरत को धक्का मारा है या नहीं?'' वह सहम गया फिर भी दृढ़ स्वर में बोला ''नहीं।'' ''साला झूठ बोलता है, देखता हूं कब तक सच नहीं कहता।'' यह इन्सपेक्टर की आवाज थो। इसके साथ ही एक डण्डा और पड़ा।

अब वह याचना नहीं कर सका। क्रोध से चेहरा लाल हो गया और आंखों से चिनगारो निकलने लगी। हाथ बंधा न होता तो शायद...।'' परन्तु वह छटपटा कर रहा गया। असह्य वेदना से पीठ जल रहा था। इंस्पेक्टर ने फिर डण्डा दिखाकर कहा, ''सच बोल नहीं तो खाल खींच लूंगा....।''

''नहीं....।'' वह जोर से चीखा।

फिर लगातार दो-तीन डंडे पड़ा।

''मुझे क्यों मारते हो; मैंने कुछ नहीं किया है।'' वह पूरो ताकत लगाकर चीखा।

परन्तु इंस्पेक्टर जैसे उसे मारने को ही कसम खाकर आया था। उसने दा-तीन थप्पड़ सिर में ठोंक दिया। महेश बाबू अपनी अवशता पर छटपटा उठा। सोचा जब तक 'हां' नहीं कहूंगा यह जानवर मार-मार कर मेरो चमड़ी उधेड़ देगा। यह कैसी समाज की व्यवस्था है? सुरक्षा की आड़ लेकर लोगों को सताया जाता है। ये समाज के कैसे रक्षक हैं? डंडा को ऊपर उठता हुआ देखा तो उसका अंग-प्रत्यंग कांप उठा। एकदम मायूस होकर बोला, ''हां मैंने मारा है।'' इंस्पेक्टर ने एक अत्यन्त मलिन शब्द का प्रयोग करते हुए कहा ''हरामखोर अब आया रास्ते पर...।''

महेश बाबू पत्नो और बच्चे की चिन्ता में डूबा छुटकारा का उपाय सोचता रहा; परन्तु उसे कोई रास्ता नहीं दीखता था। न कोई नेता उसका रिश्तेदार था न कोई बड़ा अधिकारो। यह वह जगह थी जहां पहुंचकर हम अपने को सुरक्षित महसूस करते; परन्तु दुर्भाग्य....हमार लिए यही आततायियों का अड्डा है।

कई क्षण निरर्थक बीत गये। सिपाही सामने आकर खड़ा हो गया। भय से उसकी आंखें सिकुड़ गईं और चेहर पर मलिनता छा गई। परन्तु सिपाही ने कुछ नहीं किया। उसने धीर-से फुसफुसाया ''तुम्हें एक शत पर छोड़ दिया जायेगा।''

''क्या..... ?'' अनायास ही उसके मुंह से निकल गया।

''सौ रुपये देने पड़ेंगे।'' सिपाही बोला

''नहीं...।'' वह मन ही मन बुदबुदाया। दूसरा हाथ अपने आप बगल की जेब टटोलने लगा।

''तुम्हारो मर्जी.....कहो तो साहब से बात कर लेता ह्। मामला यहीं रफा-दफा हो जायेगा।''

वह कुछ नहीं बोला; मायूसी से सिर झुकाये सोचता रहा। उसे असमंजस में देख सिपाही फिर बोला, ''कोई जबरदस्ती नहीं है, न चाहो, जाने दो। मैंने तुम्हारो भले की बात कही है। दो-चार दिन जेल की हवा खाओगे तो सब पता चल जायेगा।''

''नहीं नहीं.....आप बात कर लीजिए।'' उसके स्वर में दढ़ता थी। उसने प्रत्यक्ष में ही इतना ही कहा यद्यपि उसकी इच्छा हुई कि कह दे ''लानत है तुम पर, तुम देश और समाज के नाम पर कलंक हो। जनता तुम पर भरोसा करती है, तुम्हें अपना रक्षक समझती है, परन्तु तुम.....।''

अब वह थाना के बाहर आ गया था। छूट जाने की प्रसन्नता थी। परन्तु जेब में अब केवल दो सौ रुपये ही शेष थे। वह सोच रहा था—पत्नो को क्या जवाब देगा; तथा महीने भर का खर्च कैसे पूरा होगा? वह इसी उधेड़बुन में डूबा चौराहा पार कर लिया। सड़क के दोनों किनार लैंप पोस्ट पर उदास लट्टू जल रहे थे। एक दो सायकिल वाले सर-सर उसके बगल से गुजर गये तो उसके शरोर में कंपकपी-सी हो गयी। सामने सड़क पर इक्का-दुक्का सवारो आ-जा रही थी।

तभी अचानक उसे वही युवती दिख गई। उसके चेहर पर विवशता और खीझ के मिले-जुले भाव आकर मिट गये। अनागत विपत्ति की आशंका उसे एक बार फिर झकझोर कर चली गयी। फिर वह असंयत और अव्यवस्थित हो गया। थाना में भोगा हुआ त्रासदायक क्षण मूर्त हो गया और क्रोध से उसका सारा शरोर एकबारगी झनझना उठा ''तुमने मुझसे किस जन्म का बदला लिया है।''

''मैं अभागन हू, भैया। मुझे माफ कर देना....।''

''क्या?'' इस विसंगति से उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

''हां....।'' उसकी टटती हुई आवाज महेश बाबू ने सुनी। जिस गली में वह युवती मुड़कर गायब हो गई थी वहीं वह सिपाही कुछ दूरो पर खड़ा उस पर निगाह रखे हुए था।

14. इस मेज से उस मेज तक

वह गन्दा-सा होटल का एक कमरा था जहां हम उस दिन आधी कप चाय को आधा घंटा से पी रहे थे। तभी एकाएक रामू अखबार के एक विज्ञापन को देखकर खुशी से नाचने लगा। एक सरकारी दफ्तर में दो लिपिक के पद रिक्त थे। हमें लगा बस यह जगह हमार लिए ही रिक्त है।

दूसर दिन सपाट से हम लोग उस दफ्तर की खोज में निकल गये। यही कोई आधा घण्टा के भीतर हम उसे खोजने में सफल हो गये थे। हमार मन में गुदगुदी उठ रही थी कि हमें बहुत आसानी से नौकरी मिलने वाली है। पता नहीं हमें ऐसा क्यों लग रहा था कि हमार जाते ही आदेश मिल जायेगा। हमने अत्यन्त प्रफुल्लित मन से चपरासी से पूछा ''हम लोग लिपिक पद के लिए अर्जी देने आये हैं, फार्म किसके पास मिलेगा? उसने उंगली से इंगित करके कहा, ''उस बाबू के पास।''

हम दोनों सीधा उसके सामने जाकर खड़े हो गये। वह फाइल पर झुका हुआ था। दफ्तर के अन्य सभी लोग फाइलों पर झुके हुए थे। बिलकुल शान्त, कहीं कोई गड़बड़ नहीं दिखता था। बीच-बीच में टिर-टिर घंटी बजती और हम चौंक कर देखते चपरासी आकर सामने की डोंग में रखा फाइल उठाता और दूसरी मेज पर ले जाकर पटक देता था। हमें लग रहा था लोग बड़े तनदेही से अपने-अपने कामों में जुट हुए हैं। उस दिन हम लोग बड़े मनोयोग से उस सरकारी दफ्तर का निरोक्षण करते रहे।

कई मिनट तक चुपचाप खड़े रहने पर भी जब उसने सिर उठाकर नहीं देखा तो रामू से रहा नहीं गया, बोला ''बड़े बाबू, हम लोग लिपिक पद के लिए अर्जी देने आये हैं, हमें फार्म चाहिए।'' इस व्यवधान के बावजूद उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं जाहिर की। पूर्ववत खामोशी से काम में जुटा रहा। यह हम लोगों के बौखला जाने के लिए पर्याप्त था परन्तु हम घोर मानसिक यन्त्रणा के दौर से गुजरते हुए भी गम्भीर बने रहे। वह एक फाइल उठाता, उलट-पलट कर कुछ देखता और पुनः पटक देता। दूसरी उठाता और देखता और पुनः पटक देता। यह क्रम बहुत देर तक जारी रहा। हम आज्ञाकारी बालक की भांति खड़े थे। परन्तु उसने हमारी तरफ रद्दी के टुकड़े की तरह एक बार भी आंख उठाकर नहीं देखा।

बहुत देर पश्चात जब उसने हम पर दृष्टिपात किया तो हमें लगा कि हम कृतार्थ हो गये। फिर भी जैसे-तैसे हमने साहस बटोरकर अपनी बात कहनी चाही तो वह कुपित हो उठा, बोला, ''आप लोगों को दिखता नहीं है, मैं काम कर रहा हूं? आप लोग इस तरह मेर सिर में सवार रहोगे तो काम कैसे होगा? खाली वक्त में आना चाहिए परन्तु आप लोग तो बस....।'' आगे कुछ सुनने अथवा कहने की हिम्मत हममें नहीं थी। गुस्से से रामू का चेहरा तमतमा गया था। हम दूसर दिन आने का निश्चय करके वहां से चल दिये।

रामू चुपचाप चल रहा था। वह अभी भी गुस्से में था। ऐसे अप्रत्याशित व्यवहार की हमने कल्पना भी नहीं की थी। हमार मन की चंचलता खत्म हो गई थी और हम एक वृद्ध की भांति सोचने लगे थे। ऐसे निःशब्द चलते रहना बड़ा बुरा लग रहा था। मैं सोच रहा था कम से कम रामू को उनकी आलोचना ही करना चाहिए। परन्तु इस तरह चुप्पी साध लेना मुझे असह्य हो रहा था। मैंने कहा, ''रामू, कल हमें दफ्तर खुलने के पूर्व ही पहुंच जाना चाहिए।''

''मुझे नहीं जाना है'' उसने सामने पड़ी मिट्टी को ठोकर मार दी। 'रामू, हमें धैर्य नहीं खोना चाहिए, हो सकता है वह बहुत जरूरी काम निबटाता रहा हो।'' वह मेरी बात से सहमत नहीं था यह साफ जाहिर है। प्रत्युत्तर में उसने कुछ नहीं कहा जैसे मेरी बातों से उसे कुछ लेना-देना नहीं है।

दूसर दिन हम साढ़े दस बजते ही दफ्तर में जाकर बरामदा में पड़ी एक बेंच पर बैठ गये। चपरासी भीतर मेज कुर्सी साफ कर रहा था। उसने निकलते ही कहा, ''उठो बेंच झाड़ना है।''

हम चुपचाप उठ गये। रामू का चेहरा विकृत हो गया था। हम इस अशिष्टता और अपमान से झुलसकर रह गये। हमार विद्यालय का चपरासी ऐसी अशिष्टता करता तो उसी वक्त उसकी धुनाई कर देते। परन्तु हम यहां नौकरो की लालसा से आये थे। अपमानित होकर भी गुनगुनाते हुए इधर-उधर टहलने लगे जैसे कुछ भी न हुआ हो।

ग्यारह बजे के बाद दफ्तर में लोग एक-एक कर टपकने लगे। हम लोगों ने निश्चय किया कि उस बाबू के आते ही फार्म लेकर भर देंगे। हम यह देखकर चकित थे कि विद्यालय की भांति यहां ठीक समय पर उपस्थित होना अनिवार्य नहीं था। यदि था तो भी लोग बड़े मजे से साढ़े ग्यारह बजे तक आकर अपनी कुर्सी पर बैठ रहे थे। हम लोगों ने जाकर उस संबंधित बाबू को नमस्कार किया। यह हमारो विवशता थी। उसने न तो हमार नमस्कार का जवाब दिया न फाइल पर से आंख उठाकर ही देखा। हम कई मिनट तक चुपचाप खड़े रहे फिर आहत-से अपमानित मुद्रा लिए इधर-उधर देखकर पास पड़ी दो खाली कुर्सियों पर बैठ गये।

बारह बजे के लगभग साहब दफ्तर में आये। वे लगभग एक घण्टा बैठकर दफ्तर से चले जाते थे। इसी समय हमने उस लिपिक का ध्यान पुनः अपनी आवश्यकता की ओर आकृष्ट किया तब उसने चपरासो को बुलाकर दो फार्म निकाल देने को कहा। चपरासी हां कहकर चला गया। साहब के कमर की घंटो बजी थी। वहां से लौटा तो डाक लेकर अन्यत्र चला गया। शायद उसे फार्म देने की सुधि नहीं रही या उसने जानबूझकर ही ऐसा किया—कहा नहीं जा सकता। इस तरह डेढ़ बज गया! हमें फार्म नहीं मिला और लोग उठ-उठकर चाय-पान के लिए चले गये। हम भी मनहूस सूरत लिए वहां से निकल गये और ढाई बजने का इंतजार करने लगे—क्योंकि डेढ़ बजे चाय-पान के लिए जाने वाले कर्मचारो दफ्तर में ढाई बजे के पूर्व नहीं आते थे। साहब तो एक बजे के करोब ही दफ्तर छोड़ चुके थे।

चपरासी तीन बजे डाक लेकर आया। हमने अत्यंत खेद प्रकट करते हुए कहा, ''अर भाई, हमें फार्म तो दे दो।'' परन्तु वह तो चपरासी था। फिर हमार जैसा विवश नहीं था। ''चाय पिलाना पड़ेगा बाबूजी।'' वह निर्लज्जतापूर्वक दांत निपोरने लगा। ''जरूरो है....।'' हमने एक-दूसर की ओर देखा। ''सभी लोग पिलाते हैं बाबू जी।'' अपरोक्ष रूप से उसने यही कहा, ''हां पिलाना पड़ेगा।''

फार्म मिलते ही हमने आवश्यक प्रविष्टियां कर दीं और उस संबंधित लिपिक के मेज पर रख दिया। दूसर दिन भी वह उसी मेज पर पड़ा रहा। चपरासी से पूछने पर पता चला कि उस लिपिक ने अन्य आवश्यक रिक्त स्थानों की पूर्ति नहीं किया है।

''फिर क्या करं? क्या साहब से मिलना उचित होगा?'' हम विचार-विमर्श करने लगे।

''बिना आवेदन पत्र भर उनसे मिलने से कोई फायदा नहीं होगा'' चपरासी बोला।

हमें उसकी बातों में सच्चाई दिखाई दी।

''फिर क्या किया जाये?'' हमने उसी से पूछा।

''पांच-पांच रुपये निकालिए मैं अभी करा देता हूं।'' चपरासी बेधड़क बोल दिया।

हम इस प्रस्ताव के लिए कतई तैयार नहीं थे। कुछ क्षण तक भौचक उसे घूरते रहे। हमें नाकरो चाहिए थी।

रुपये चपरासी के हाथ में रखते हुए हाथ कांप रहा था जैसे कुछ अनर्थ हो रहा है। हमार आदर्श की चिड़िया आकाश में उड़ गई थी।

लगभग पन्द्रह मिनट के बाद चपरासी ने आकर बताया कि हमारा आवेदन पत्र साहब के मेज तक पहुंच गया है और साहब हमें बुला रहे है। मैंने रामू की ओर देखा उसके चेहर पर उदासी छाई हुई थी।

---

15. छुआछूत

इस समय लगभग ग्यारह बजे होंगे मैं धूप में खड़ा फेंसिंग पोस्ट की ढलाई देख रहा था। तभी चपरासी ने आकर बताया कि शीघ्र ही मुझे साहब के साथ रायपुर के लिए प्रस्थान करना है। मैं इस अप्रत्याशित आदेश के लिए कुड़बुड़ाया तो.....किन्तु ड्राइवर जीप लेकर आ गया था।

शर्मा साहब बाहर खड़े हमारो प्रतीक्षा कर रहे थे। गरमी के दिन थे और बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। खलासी को जीप में सुराही रखते देख पानी पीने की इच्छा होने लगी। वह ट में दो गिलास पानी रखकर ले आया। साहब ने गिलास लेते हुए पूछा ''ड्राइवर के लिए अलग गिलास में पानी नहीं लाया क्या?'' वह कुछ कहता इसके पहले ही ड्राइवर ने कह दिया कि वह पानी पी चुका है। फिर जीप चल पड़ी। ड्राइवर के लिए अलग गिलास में पानी मंगाने का सबब मैं नहीं समझ पाया।

निरन्तर तीन-चार घंट चलते रहने के पश्चात एक जगह नल देखकर ड्राइवर ने जीप खड़ी कर दी और दौड़कर पानी लेने चला गया। प्यास शायद साहब को भी लग रही थी। उन्होंने मुझसे पानी पिलान को कहा। अब तक ड्राइवर आ चुका था और बोनट खोलकर टकी में पानी भर रहा था। वह नल पर ही पानी पीकर आया था। मैं ड्राइवर को पानी पिलाने के लिए कहने वाला था कि मुझे खलासी से अलग गिलास में पानी मंगाने वाली बात याद आ गई और मैंने चुपचाप उन्हं पानी दे दिया।

कुछ देर पश्चात हम कांकेर पहुंच गये। साहब, ड्राइवर को तोन रुपये देते हुए बोले, ''जा र, खाना खा ले....।'' वह चला गया तो हम दोनों सामने की एक होटल में आ गये। उन्होंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, ''यह जो अपना ड्राइवर है न! वह साला जाति का घसिया है, इसलिए तो तुमसे पानी मांगा था। मैं सोच रहा था कि तुम माइंड तो नहीं करोगे....।''

''अर, मुझे तो पता ही नहीं था, वैसे लगता तो नहीं है, साहब.....!'' मैंने अपनी अनभिज्ञता जाहिर करते हुए कहा। हालांकि उसके ब्राह्मण अथवा घसिया होने से मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता था।

''हूं....सूरत शक्ल से तो बिलकुल नहीं लगता। बड़ा साफ सुथरा और सुंदर ढंग से रहता है।''

हम दोनों आमने-सामने की कुर्सी पर बैठे थे। होटल का नौकर दो गिलास पानी रखकर चला गया। उन्होंने एक गिलास अपनी ओर सरका लिया, ''तुम्हें नानवेज चलता है कि नहीं?''

''नहीं।'' मैं कुर्सी लेकर कमर के एक कोन में बैठ गया। उन्होंने कहा–''मैं तो आज नानवेज ही लूंगा, वैसे अपने घर में बिलकुल नहीं चलता।''

साहब मुझे पांच रुपये देकर शाकाहारो भोजनालय में भेजने लगे। मैंने कहा–''मुझे अभी भूख नहीं है, रायपुर में खा लूंगा।''

साहब अपने को गुजराती ब्राह्मण कहते थे और इस वक्त मांस भक्षण के लिए तत्पर थे। लोग जीवित प्राणियों के छू जाने से अस्पृश्य हो जाते हैं, मृत के खाने से नहीं! सामने प्लेट आते ही वे भूखे जानवर की तरह उस पर झपट पड़े। वे मांस का पहला टकड़ा मुंह में रख लिये। मैं सोचने लगा, क्या हमारो तरह ये जानवर भी आपस में एक-दूसर से घृणा करते होंगे...। साहब बड़ी व्यस्ततापूर्वक खाना खा रहे थे। उन्हें इस बात की कतई परवाह नहीं थी कि इस गोश्त का काटने वाला, बनाने वाला या परोसने वाला ऊंची जाति का है अथवा.....या यह किस जानवर का गोश्त है? बकरो का, मुर्गी का, या सूअर का ही...। सूअर का स्मरण आते ही मुझे दूर से उबकाई-सी आने लगी। ''बड़ा स्वादिष्ट है...।'' साहब हड्डी को चूसकर प्लेट में रखते हुए बोले। मेरा मन घृणा से भर आया और मैं बाहर बरामदे में निकल आया।

कुछ देर पश्चात वे मांस-हड्डी चूसकर डकारते हुए बाहर आ गये। मैंने देखा ड्राइवर शाकाहारो

भोजनालय से मुंह पोंछते हुए आ रहा था। उसके आते ही हम उस शहर को पीछे छोड़ निकल गये।

यही कोई एक घण्टा चलने के पश्चात जीप अपने आप खड़ी हो गयी। ड्राइवर ने कहा, इंजन शायद गरम हो गया है। आधा घंटा तक ठंडा होने के पश्चात भी इंजन स्टाट नहीं हुआ। ड्राइवर ने कहा, ''शायद धक्का मारने से चालू हो जाये...।'' हम लोग जीप को ढकेलते हुए लगभग दो फर्लांग ले गये। ड्राइवर सीट पर बैठा स्टयरिंग घुमाता रहा। इंजन अब भी चालू नहीं हुआ।

अन्त में परशान हा साहब सीट पर बैठते हुए बोले–''फिल्टर में पेटोल डालकर देखो तो....।'' ड्राइवर ने झटपट दो फुट लम्बी पाइप निकाला, पाइप के एक सिर को पेटोल की टकी में डाला, दूसर सिर को मुंह में रखकर पेटोल खींचा और फिल्टर में उड़ेल दिया। इंजन 'घुर....र....की आवाज के साथ चुप हो गया। उसने दो-तीन बार इसी तरह मुंह में पाइप रखकर पेटोल खींचा और फिल्टर में भर दिया। इंजन लगभग चालू होते-होते रुक गया।

ड्राइवर पाइप में ठीक से पेटोल नहीं खींच पाता था। साहब खींझकर उतर और ड्राइवर के हाथ से पाइप छीनते हुए बोले, ''चल र; तू स्टाट कर....।'' उन्होंने झट पाइप का एक छोर मुंह में रखा और पेटोल खींचकर फिल्टर में भर दिया। उस जूठे पाइप से साहब को पेटोल खींचते देख मैं अपनी हंसी नहीं रोक सका। मुझे हंसते देख साहब भी हंसने लगे। सामने खड़ा ड्राइवर भी हंस रहा था। पता नहीं उन दोनों की हंसी की वजह इंजन का चालू हो जाना था या मेरो हंसी। इंजन जोर-जोर की आवाज के साथ धुंआ फेंक रहा था।

16. मातहत

''साब, आपको बुला रहे हैं।''

''कोई आया है क्या?''.....उसने मेज पर बिखर कागज-पेंसिल को समेटकर बैग में रख दिया।

''जी.....बड़े साहेब आये हैं।''

वह शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ। एक हाथ में टप और डायरो लिया दूसर हाथ से रुमाल निकाल मुंह को पोंछते हुए बुदबुदाने लगा—यह टोन का शेड कितना तप जाता है। शरोर पर पसीने की असंख्य धारायें रंगने-सी लगती हैं। अंत में गले को पोंछकर वह शेड से बाहर आ गया।

बाहर आते ही गरम हवा का एक झोंका उसके चेहर पर से फिसल गया। लगभग तीन सौ मीटर की दूरो को जहां जीप खड़ी थी उसने दौड़ने और चलने के बीच की स्थिति में तय किया। वहां पहुंचते-पहुंचते लगभग वह हांफने लगा था। साहब जीप में बैठे निरन्तर उसी को देख रहे थे। उसने दूर से नमस्ते किया। साहब का चेहरा भभूका हो रहा था। वजह जान पाये इतना अवसर नहीं था। फिर आफोसरों के नाराज होने के लिए कोई वजह हो ऐसा आवश्यक भी तो नहीं है।

''क्यों मिस्टर, तुम कहां थे?'' बेहद सख्त आवाज। रामू मन मसोसकर रह गया, न जाने ये आफीसर लोग अपने आप को क्या समझते हैं।

''नीचे शेड में काम कर रहा था साब!'' उसने अत्यंत संयत स्वर में कहा।

''क्या कर रहे थे?''

''मस्टर रोल बना रहा था; साब।''

''और ये मशीनें क्यों खड़ी हैं?''

''पाइप लाइन टट गया है, पानी नहीं आ सकता।''

''तो वहां खड़े होकर बनवाओ, शेड में बैठने से बन जायेगा क्या?'' जिस ढंग से कहा गया उससे अधिक से अधिक ठेस पहुंचता था। पाइप लाइन उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर है यह भलीभांति जानते हुए भी साहब उसे डांट रहे थे।

.....रामू चुप रहा।

'किसके चार्ज में है?

'कार, साब!'

''तो उसके पोछे घूमो....बन जाने पर मुझे व्यक्तिगत रूप से सूचित करना, समझे....।'' उन्होंने बड़ी ही उपेक्षा से सिर घुमा लिया। जैसे न देखने लायक चीज को अब तक देखते रहे हों।

'जी.....' उसके स्वर में आक्रोश और निराशा थी।

जीप चली गई। धूल दूर तक उड़ता रहा। वह वहीं खड़ा कछुआ की पीठ की तरह उभरते हुए बांध को देखता रहा। उसके होठों पर मुसकान थिरक उठा। वह सोचने लगा—कुछ ही वर्षों में यह बांध पूर्ण हो जायेगा और इस वेगवती नदी की चंचल धारा को अपनी बाहों में समेटकर स्थिर कर देगा। तब यह धारा नहरों से होकर सूखी-प्यासी धरती को समृद्ध करती हुई न जाने कितने निराश, कुंठित मन-प्राण को नया जीवन देगी। तब न दुभिक्ष रहेगा न लोग दाने-दाने को मोहताज होंगे। चारों ओर हर-भर खेत खुशी से झूमते रहेंगे। उसकी आंखों के सामने सांप की तरह बलखाती नहर बह रही थी। जब इस बांध का पानी उसके गांव के खेतों को सींचित करगा तब वह कहेगा.....यह उसी बांध का पानो है जिसमें उसने शीत और गरमी में एकरस काम किया है। इसके निर्माण में उसका पसीना बहा है। उन अनगिनत हाथों में जिन्होंने इस बांध के निर्माण में योग दिया है उसके भी दो हाथ हैं।

''क्या कह रहे थे, साब....?'' एक टाइम कीपर पूछ रहा था।

''नीचे बैठा था उसके लिए डांट रहे थे।''

''आपने बताया नहीं कि पाइप लाइन टट गया है।''

''बताया था।''

''फिर भी....!''

''हां,....शायद डांटना भी सरकारो आफीसरों का कोई कर्तव्य है। जिस दिन ये किसी को डांटते न होंगे, इन्हें एहसास न होता होगा कि वे आफीसर के पद पर हैं।''

''ऐसा ही होगा, साब....।'' टाइम कीपर ने कहा और दोनों हंसने लगे। फिर रामू बोला, ''तुम देख तो आओ, पाइप लाइन की क्या स्थिति है....तब तक मैं यहीं हूं।'' टाइम कीपर चला गया।

चारों तरफ मजदूर कंकड़-पत्थर चुन रहे थे। कुछ दूरो पर आपरटर मशीन के नीचे बैठे गप्पे हांक रहे थे। एक कह रहा था, ''टकला तो मुझसे कहता था कि तुम डीजल बेचकर पैसा दो....यहां के आफीसरों के सामने तो छोट कर्मचारो जैसे कीड़े-मकोड़े हों। हर बात में रोब गांठते और नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं।''

आकाश से अंगार बरस रहे थे। उसने जेब से रूमाल निकाल फिर मुंह पोछ लिया और आगे सरक आया; अब आपरटरों की बातें सुनाई नहीं दे रही थी। धीर-धीर वह पिछली यादों के जाले में उलझता चला गया—जब उसका तबादला इस बांध पर हुआ था, तब मार खुशी के उसके पांव सीधे न पड़ते थ। लगता था जैसे हवा में तैर रहा हो। वह छुट्टियों में गांव जाता तो लोग कहते, ''बाबू, यहीं गंगरल बांध में तबादला क्यों नहीं करा लेते?'' और किसी अधिदर्शक का वाकया सुनाते कि उसने उन लोगों के इतने दिनों के पैसे नहीं दिया या वह समय से पगार नहीं देता....आदि।

''अर अब तो तुम भी साहब बन गये हो कितना तनख्वाह मिल जाता है।'' मालूम हो जाने पर फिर मुस्कराकर कहते हैं, ऊपरो कमाई भी तो रहती होगी.....वह बरबस हंस पड़ता है। तुम आ जाते तो हम लोगों को भी आसरा बंध जाता। कितना अटट विश्वास, कितनी आत्मीयता होती है गांव के लोगों में। और सचमुच वह सपने देखने लगता था—वह अपने पास पड़ोस के लोगों को मजदूरो दे रहा है और लोग हंस-हंसकर कह रहे हैं—अर यह तो हमार गांव का छोकरा है। फलां आदमी का लड़का है। हमार ही सामने पढ़-लिखकर साहब बना है।

उससे भी अधिक प्रसन्नता तब हुई जब उसे मुख्य बांध में ही कार्य करने का अवसर मिल गया। वह हमेशा यही सोचता उसका पसीना व्यर्थ नहीं बह रहा है। वह भी राष्ट्र निर्माण में लगा हुआ है। एक दिन इस बांध का पानी लाखों लोगों की रोजी-रोटो का साधन बनेगा।

कई बार जब निर्धारित स्तर से घटिया काम होते देखता तो वह चिल्ला पड़ता। ठेकेदारों से झगड़ता और अपने सहयोगियों को खरोखोटो सुनाता था। लोग कहते—तुम्हारा क्या जाता है, यार तुम तो ऐसे चिल्लाते हो जैसे तुम्हार घर का काम हो रहा है, या अपने घर से पैसा दे रहे हो। प्रत्युत्तर में कहता, ''यही समझ लो''...एसे ही कई क्षणों में उसने अपने को हास्यास्पद स्थिति में ला खड़ा किया था। वह स्तर बनाये रखने के लिए ठेकेदारों से उलझता और बड़े अधिकारियों से उलटो डांट खाता। यह स्थिति उसे बड़ी असहनीय लगती।

और एक दिन वह बुरो तरह अपने अधिकारो से उलझ गया। ''तुमने सरदार का बिल क्यों नहीं बनाया?'' अत्यधिक उपेक्षित स्वर। ''उसने काम पूरा नहीं किया है, साब।'' उसे समझते देर न लगी कि सरदार ने उसकी चुगली किया है।

''तो पूरा क्यों नहीं कराते....तुम किसलिए?''

''सरदार बात ही नहीं मानता, साब।''